रचना-पीयूष

(हिन्दी-रचना सीखने के लिए)

लेखक

चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए०, एल० टी०,

स्थानापन्न प्रिंसिपल, टीचर्स ट्रेनिङ्ग कालेज,

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।

१९३२

मूल्य १)

PREFACE

IN writing this treatise on Hindi composition my aim has been to present rules and examples for the right use of letters, words, sentences, marks of punctuation, idioms, proverbs, and for writing paraphrase, explanation, letters and essays, etc. The book has become a bit unwieldy in its treatment of the Chapter on Words; and this is, I trust, the chief speciality of it. I am fully confident that more mistakes occur in words than in anything else.

All through the book I have never tried to be sparing in writing down general explanations by way of introduction to various topics. This is meant to make the topics as lucid as possible.

I acknowledge help taken from various books on Grammar, Composition, Rhetorics, Dictionaries, and reading books. But, for the determination of the nature of mistakes ordinarily committed by schoolboys I have exclusively depended upon my own long experience.

BENARES :
7th August, 1927.

C. M. SUKUL.

विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ

अध्याय विषय पृष्ठ

अध्याय विषय			पृष्ठ

रचना-पीयूष

अध्याय १

प्रस्तावना

ईश्वर ने मनुष्य को सब प्राणियों में श्रेष्ठ बनाया है; उसे सबसे अधिक बुद्धि दी है; और उस बुद्धि का प्रभाव दूसरों पर प्रकट करने के लिए उसे 'व्यक्त भाषा' दी है। गाय बैल, शेर, बकरी, तोता मैना आदि अन्य प्राणी भी बोलते हैं, और अपने सजातीय प्राणियों पर अपना भाव भी किसी न किसी प्रकार प्रकट कर लेते हैं। परन्तु उनकी भाषा 'अव्यक्त भाषा' कहलाती है, अर्थात् न तो उसमें क, ख, ग, घ, आदि अक्षरों की स्पष्ट ध्वनियाँ होती हैं, और न सूक्ष्म भावों के प्रकट करने की शक्ति होती है। उनकी बोली इतने नीचे दर्जे की होती है कि हम लोग उसे निरर्थक मानते हैं; और अपनी बोली को सार्थक मानते हैं।

मनुष्य निरर्थक बोली भी बोल सकता है, परन्तु उससे उसका भाव दूसरों पर नहीं प्रकट हो सकता। भाव प्रकट करने के लिए यह आवश्यक है कि बोलनेवाले ने जिस आशय से कोई बात कही है, वही आशय सुननेवाला भी ग्रहण करे।

यह बात नियमों के द्वारा हो सकती है; अर्थात् जैसे बोलने-वाला जानता है कि अमुक भाव प्रकट करने के लिए अमुक शब्दों को अमुक क्रम से उच्चारण करना चाहिए, उसी प्रकार सुननेवाला उन शब्दों को उस क्रम में सुनकर समझ लेता है कि बोलनेवाले का यह भाव है। दोनों एक ही नियम का पालन करते हैं।

इन नियमों का साधारण अभ्यास बचपन से होता रहता है; इनका विशेष साधन अनुकरण है, परन्तु शिक्षा से भी इनका ज्ञान बढ़ सकता है। खाना, पीना, उठना, बैठना आदि साधारण कामों और साधारण बातों के भाव तो अभ्यास से सरल हो जाते हैं, परन्तु जब सूक्ष्म भावों के जानने तथा प्रकट करने की आवश्यकता होती है, तब शिक्षा ही सहायता देती है, और नियमों को याद करना पड़ता है।

यद्यपि भावों का प्रकाशन चित्रों-द्वारा या अंगों के परि-चालन-द्वारा भी किसी अंश में हो सकता है, तथापि प्रधान साधन भाषा ही है; उसी की 'रचना' से भाव प्रकट होते हैं। किसी भाषा के शब्दों को व्याकरण के नियमों के अनु-सार इस प्रकार जमाना कि उनसे मनुष्य का इष्ट भाव प्रकट हो 'रचना' है। शब्द जमाकर या तो मुख से उनका उच्चारण होता है या लेखनी से लेख होता है। इसलिए रचना दो प्रकार की हुई—(१) भाषित, (२) लिखित। दोनों प्रकार की रचनाओं में कुछ तो शक्ति की आवश्यकता है और कुछ

अभ्यास की। शक्ति का काम अपनी बुद्धि और विद्या पर अवलम्बित है, परन्तु अभ्यास के लिए नियम और उदाहरण ज़रूरी होते हैं। इस पुस्तक में लिखित रचना का वर्णन होगा; परन्तु यह भी उद्योग किया जायगा कि भाषित रचना सुधारने का कोई अवसर हाथ से न खोया जाय।

रचना में दो बातें परम प्रधान होती हैं—(१) भाषा, (२) भाव। भाषा के अन्तर्गत अक्षर, शब्द, वाक्य हैं; इस-लिए रचना में अक्षरों, शब्दों, तथा वाक्यों का विचार होना चाहिए; किसी में भी अशुद्धि होने से भाषा दूषित हो जाती है। भाषा की शुद्धि तथा उसके नियमों का वर्णन व्याकरण में होता है, और हम यह बात पहले से माने लेते हैं कि जिन विद्यार्थियों को रचना सिखाने के लिए यह पुस्तक लिखी जाती है वे हिन्दी भाषा का साधारण व्याकरण जानते हैं।

भाव का महत्त्व भाषा से भी अधिक है। विचार करने से मालूम होगा कि भाव के प्रकट करने ही के लिए भाषा है। भाषा कितनी ही सुन्दर हो, परन्तु यदि उससे भाव ठीक ठीक प्रकट नहीं होता तो वह व्यर्थ है। भाषा यदि कुछ दूषित भी हो, परन्तु भाव साफ़ दिखलाई देता हो तो भाषा के दोष को लोग प्रायः क्षमा कर देते हैं। सबसे अच्छी बात तो यह है कि भाषा और भाव दोनों सुन्दर हों; शरीर और कपड़े-लत्ते दोनों साफ़-सुथरे हों।

भाषा या भाव में किसी प्रकार का दोष होने से सुननेवाले

या पढ़नेवाले के हृदय में एक प्रकार की घबराहट या बेचैनी होने लगती है; उसकी भौंहें सिकुड़ने लगती हैं, उसके नथुनों से 'हुँक् हुँक्' शब्द निकलने लगता है। यदि दोष बहुत अधिक है तो अल्पमात्र क्रोध भी कभी कभी आने लगता है और उस दूषित रचना के सुनने या पढ़ने से जी हट जाता है। इसके विपरीत, शुद्ध और सुन्दर रचना के सुनने और पढ़ने में उत्साह बढ़ता है; वक्ता या लेखक का भाव क्रमशः ऐसे समझ में आता जाता है जैसे ढालू नाली में पानी बिना किसी रुकावट के बहता जाता हो। सुनने या पढ़नेवाले को आयास नहीं पड़ता, थकावट नहीं आती, और ध्यान विचलित नहीं होता; वह भावों को बराबर ग्रहण करता चला जाता है। ऐसी रचना के विषय में यदि कोई बात मन में आती है तो वह यही है कि "वाह वाह!" अच्छे लेखकों के लेख में यही आकर्षण-शक्ति है।

रचना के दोषों से उत्पन्न हुई जिस घबराहट का इशारा हमने किया है वह कई तरह से होती है; प्रधान प्रधान बातों का उल्लेख हम नीचे करते हैं।

(१) अशुद्ध अक्षरों के प्रयोग से। लेखों के परीक्षक भली भाँति जानते हैं कि परीक्षार्थी लोग कितनी अशुद्धियाँ करते हैं। हमने स्वयं ऐसी अशुद्धियों का जो संग्रह किया है उससे दस पाँच शब्द नमूने के लिए देते हैं—लक्षमण (लक्ष्मण), पर्शुराम (परशुराम), कौशिल्या (कौशिल्या

या कौशल्या), शुभ्म (शुभम्), उत्पन्न (उत्पन्न), बुध्यानुसार (बुद्ध्यनुसार), आवश्यक्ता (आवश्यकता), उपरोक्त (उपर्युक्त), परियाप्त (पर्याप्त), निर्पराध (निरपराध), पुलिङ्ग (पुँल्लिङ्ग), विपेश (विशेष), ऋषी (ऋषि), स्मर्ण (स्मरण), अैसा (ऐसा) आदि ।

(२) अशुद्ध शब्दों के प्रयोग से, अर्थात् ऐसे शब्द लिखने से जिनसे कि लेखक का विचार भली भाँति प्रकट नहीं होता या जिनका अर्थ या तात्पर्य पाठकों को मालुम होने की सम्भावना नहीं है। हर भाषा में बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जिनका मोटा मोटा अर्थ तो एक ही है, परन्तु उनका तात्पर्य अलग अलग होता है। अब यदि एक की जगह दूसरा शब्द रख दें तो पाठक के हृदय में एक खटक सी पैदा हो जाती है। जैसे अपराध शब्द व पाप शब्द, कृपा शब्द व दया शब्द, निर्धनता शब्द व कंगाली शब्द, धैर्य शब्द व सन्तोष शब्द।

(३) स्थानिक शब्दों के प्रयोग से अर्थात् ऐसे शब्दों से जो किसी विशेष स्थान पर बोलचाल में आते हैं, परन्तु हर जगह उसी प्रकार नहीं समझे जाते; जैसे चाँदना (सूर्य का प्रकाश), सुच्चा (खालिस)। बनारस में दही को (और बोलचाल में हाथी शब्द को भी) स्त्रीलिङ्ग में रखते हैं।

(४) ग्राम्य शब्दों, ग्लानिजनक शब्दों, अश्लील शब्दों, या मन की तुच्छता दिखानेवाले शब्दों से। जैसे "आग खायेगा तो अङ्गार हगेगा", "नाराज़ होकर तुम मेरा क्या

उखाड़ लोगे ?" इससे अधिक अश्लील शब्द देने में हम असमर्थ हैं; पाठक स्वयं सोच लेंगे।

(५) व्याकरण की अशुद्धि से। व्याकरण की अशुद्धि अक्षर में हो या शब्द में हो या वाक्य में हो, सब बुरी है। देखिए, नीचे के उदाहरण कितने खटकते हैं—

(१) मैं अपने भाई को चिट्ठी लिख दिया हूँ; (२) तुमने इस स्कूल में पढ़कर यहीं के अध्यापक हो गये; (३) तुमको तनिक सा हवा लगी कि बीमार पड़ गये।

(६) व्यर्थ द्विरुक्ति से, अर्थात् जिस भाव को एक बार लिख चुके उसे उन्हीं शब्दों या अन्य शब्दों के द्वारा बार बार लिखने से। जैसे "संसार में व्यापार सब पेशों से श्रेष्ठ है, और इसके बराबर दुनिया में कोई पेशा नहीं है"। कभी कभी द्विरुक्ति से अच्छा काम भी निकलता है, परन्तु ऐसे विशेष अवसर होते हैं।

(७) भाव की विषमता से, अर्थात् जिस वस्तु के बारे में एक बार एक भाव, आदर या निरादर का, प्रकट किया उसी वस्तु के बारे में दूसरी बार उसके विरुद्ध भाव के प्रकट करने से। जैसे किसी के लिए कभी 'आप' लिखना, कभी 'तुम' लिखना; कभी एकवचन क्रिया का प्रयोग करना कभी बहु-वचन का।

(८) असत्य बातों से। रचना के पढ़नेवाले यह आशा करते हैं कि जितनी बातें लिखी गई हैं सब सत्य हैं। इसलिए

रचना में असत्य बातों का मिलना बहुत खटकता है; जैसे "रेल बनी है जो एक घंटे में लाखों मील जाती है।"

(९) अप्राकरणिक विषय से अर्थात् ऐसे विषय से जिसका कोई लगाव नहीं है। चाहे कितनी ही अच्छी बात कही जावे, परन्तु यदि उसका सम्बन्ध अपने विषय से नहीं है तो वह चित्त को खटकती सी प्रतीत होती है।

(१०) प्रबन्ध की विषमता से; अर्थात् प्रबन्ध की जो मुख्य बातें हैं उन पर बहुत कम लिखने और जो अप्रधान बातें हैं उन पर लम्बी चौड़ी बहस करने से।

(११) विषय के दुःस्थापन से, अर्थात् अपने विचारों को ठीक ठीक स्थान पर न रखकर उलटा पलटा रखने से। नियम यह है कि विचार इस प्रकार रक्खे जावें जिससे एक के पीछे दूसरा स्वाभाविक जँचे।

(१२) थोड़े से भाव के लिए अधिक शब्दाडम्बर रचने से। अच्छे लेखकों की भाषा में अर्थ-गौरव होता है, अर्थात् शब्द कम होते हैं, भाव बहुत होता है।

इसी प्रकार की अनेकों बातें हैं जो रचना को दूषित करती हैं। हमने इनका कुछ वर्णन पहले ही इसलिए कर दिया कि छात्रों को इनका कुछ साधारण ज्ञान पहले से रहे ताकि आगे आनेवाले नियमों का यथार्थ तात्पर्य वे समझ सकें। इन बातों का और भी विवरण यथा-प्रसंग आगे आयेगा। हम उद्योग करेंगे कि अक्षरों, शब्दों, वाक्यों,

सन्दर्भों तथा भावों के दोषों के वर्णन तथा उनके दूर करने के उपाय अलग अलग रहें।

आगे के अध्यायों में हम छात्रों को 'तुम' शब्द के द्वारा सम्बोधन करेंगे; इसका अभिप्राय उनकी अप्रतिष्ठा नहीं है, किन्तु गुरु-शिष्य-संवाद की पुरानी शैली की नक़ल है।

अध्याय २

अक्षर-शुद्धि

अक्षरों से शब्द बनते हैं और शब्दों से वाक्य बनते हैं। यदि किसी शब्द का कोई अक्षर अशुद्ध कहा या लिखा जाता है तो सुनने या पढ़नेवाले को खटक पैदा होती है। देवनागरी लिपि ऐसी शुद्ध और पूर्ण लिपि है कि उसमें अशुद्धि का प्रायः अवसर नहीं; तथापि लोग जिन शब्दों का उच्चारण ठीक ठीक नहीं करते उन्हें ठीक लिखते भी नहीं। इसके लिए आवश्यक है कि शुद्ध उच्चारण पर ज़ोर दिया जाय।

अशुद्धियाँ प्रायः इस प्रकार होती हैं—

(१) न और ण के सम्बन्ध में;
(२) श और ष के सम्बन्ध में;
(३) छ और क्ष के सम्बन्ध में;
(४) ब और व के सम्बन्ध में;
(५) ख और ष के सम्बन्ध में;
(६) हल् में;
(७) एकवर्गीय अक्षरों के संयोग में;
(८) अनुस्वार को संयुक्ताक्षर का रूप देने में;
(९) ऋ और रि के सम्बन्ध में;
(१०) सन्धि में;
(११) शब्दों के अन्त में प्रत्यय लगाने में।

(१) न और ण का सम्बन्ध

पुरानी कविता में प्रायः ण, श, च के स्थान में न, स, छ का ही प्रयोग होता था, जैसे चरन, सरन, सुभ, राच्छस, छेम, आदि। परन्तु आधुनिक खड़ी बोली के पद्य में, तथा गद्य में अक्षरों के शुद्ध संस्कृत रूप देने की प्रथा है।

नियम—ष्, र्, ऋ के परे यदि स्वर युक्त न हो या दोनों के बीच स्वर, कवर्ग, पवर्ग, य, व, ह में से एक या कई आ जाते हों तो उस न के स्थान में ण हो जाता है; जैसे चरण, उत्तरायण, परिणाम, प्रमाण आदि। देख लो कि इसी प्रकार के शब्द गमन, दक्षिणायन, उपनाम, सम्मान आदि हैं जिनमें ष्, र्, ऋ के न आने से न के स्थान में ण नहीं हुआ। मार्जन शब्द में र् और न् के बीच 'ज' आया है जो बताये हुए अक्षरों में नहीं है, इसी लिए न के स्थान में ण नहीं हुआ।

उपर्युक्त नियम के अनुसार समासान्त शब्दों में कभी कभी दोनों रूप रहते हैं, जैसे—पितृ + वन = पितृवन या पितृवण, सुरा + पान = सुरापान या सुरापाण।

संस्कृत के जिन धातुओं में ण होता है उनसे बने हुए रूपों में भी रहता है, जैसे गण, निपुण, पुण्य, गुण, मणि।

अभ्यास—निम्न-लिखित शब्दों में जहाँ उचित हो न के स्थान में ण करो—प्रनाम, मिश्रन, सम्मान, प्रकाशन, साधारन, कर्त्तन, प्रनाली, पराह्न, मध्याह्न, फाल्गुन।

(२) श और ष का सम्बन्ध

यथार्थ में ये दोनों भिन्न भिन्न अक्षर हैं, एक का परिवर्त्तन दूसरे में कभी नहीं होता। श के सम्बन्धी क् और ग् हैं, देखो दिक्-पति, दिग्वसन, दिशा शब्दों में एक ही मूल है। संस्कृत शब्दों में च, छ, के पहले श ही आता है, जैसे दुश्चरित्र, निश्छल। अरबी, फ़ारसी, अँगरेज़ी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों में 'ष' का प्रयोग कभी न करना चाहिए, जैसे नक़्शा, मश्क़, शामिल।

ष चार प्रकार के शब्दों में आता है, (१) ऐसे शब्दों में जिनके मूलधातु ही में ष् हो, जैसे पुष् धातु से बने रूप पुष्ट, पुष्टि, पोष, पोषक, पुष्य, पोष्य, पौष; रुष् से बने रूप रुष्ट, रोष, आदि; शिष् से बने रूप शिष्ट, शिष्य, शेष, विशेष, आदि।

(२) ऐसे शब्दों में जिनमें स के स्थान में ष हो गया हो, उसका नियम यह है कि अ, आ को छोड़कर कोई भी स्वर हो, कवर्ग का कोई अक्षर हो, य र ल व ह में से कोई अक्षर हो, तो उसके परे आया हुआ स, ष हो जाता है, जैसे अभि + सेक = अभिषेक, नि + सिद्ध = निषिद्ध, अनु + संग = अनुषंग, वि + सम = विषम।

(३) सन्धि करने में क, ख, ट, ठ, प, फ के पहले ष् आता है, जैसे निः = काम = निष्काम, धनुः + टंकोर = धनुष्टंकोर, निः + फल = निष्फल।

(४) कुछ अन्य शब्दों में जिनका मूलधातु सरलता से

दिखाई नहीं देता, जैसे भीष्म, दुष्यन्त, वाष्प, मनुष्य, पुरुष, पुष्प, धनुष, मेष, वृष, आषाढ़। स्मरण रखना चाहिए कि वेश्म, श्मशान, दृश्य, श्मश्रु आदि शब्दों में श् है।

अभ्यास—निम्न-लिखित शब्द शुद्ध करो—आशाढ़, विषेश, पुश्प, दृष्य, पुश्ट, सन्तोश, शाशन, षोडष, अभिसेक, पुरुश, विभीशण, निर्देश।

(३) छ और क्ष का सम्बन्ध

क्ष संयुक्ताक्षर है जो क् और ष् के संयोग से बना है। संस्कृत के क्ष वाले शब्द ठेठ हिन्दी में छ से लिखे जाते हैं। जैसे अक्षर—अच्छर, क्षेम—छेम, क्षत्रिय—छत्री, आदि। जहाँ तक हो उनका शुद्ध रूप ही रखना अच्छा है। कुछ शब्दों पर विद्यार्थियों का ध्यान दिलाया जाता है; इनको दूसरे रूप से लिखना अशुद्ध है:—

छत्र (छतरी), क्षत्र (क्षत्रिय), छात्र (विद्यार्थी), अच्छ या स्वच्छ (साफ़), अक्ष (धुरा), छादन (ढकना), इच्छा, तुच्छ, समक्ष, क्षय, क्षमा, क्षोभ।

अभ्यास—निम्न-लिखित शब्दों में जो अशुद्ध हों उन्हें शुद्ध करो—क्षिति, छुधा, क्षुब्ध, प्रत्यच्छ, आक्षादन, छिद्र, नच्छत्र, शिक्षा, छेत्र, स्वच्छ।

(४) ब और व का सम्बन्ध

खड़ी हिन्दी, फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी के शब्दों में जहाँ

जैसा उच्चारण होता है वहाँ ब या व का प्रयोग होता है; जैसे बाबू, वहाँ, आबदार, वजह, बिस्कुट, बोट आदि। परन्तु संस्कृत ब वाले शब्दों की संख्या कम, तथा व वालों की संख्या बहुत अधिक है। बोलचाल में प्राय: व के स्थान में ब उच्चारण करते हैं, इसी लिए लिखने में ध्यान रखने की आवश्यकता होती है। नियमों से काम निकलता न देखकर हम कुछ शब्द ब वाले नीचे लिखते हैं।

बन्ध, बहि:, बल, बलि, बहु, बाल, बाहु, बिम्ब, बीज, बीभत्स, बुध, बुभुक्षा, ब्रह्म, तथा इन्हीं से बने अन्य शब्द, उल्बण।

अभ्यास—निम्नलिखित शब्द जैसे छपे हैं वैसा ही उनका उच्चारण करो—सम्बन्ध, बहिष्कार, बलवान्, बहुधन, बाल्य, बालिका, बाहुबल, बाघ, बुद्ध, बौद्ध, ब्राह्मण, बिभीषण या विभीषण। देवी, वैश्य, विद्या, वनिता, वेद, विष्णु, वेला, वेश्या, वृक्ष, व्यवहार, वायु, वीणा, विशाल, वन, व्यञ्जन, वर्ष, विशेष, विलास, विभव, वामन, विकार।

(५) ख और ष का सम्बन्ध

पुरानी हिन्दी में सर्वत्र ष का प्रयोग होता था, जैसे सषि, षाना पीना। आज-कल सिवाय संस्कृत शब्दों के ष का प्रयोग नहीं होता, सो भी उसका उच्चारण श की भाँति प्राय: होता है; इसलिए अधिक भ्रम होने की सम्भावना नहीं है। किन्तु

जिस शब्द में श और ख दोनों प्रकार का उच्चारण हो सके उसे बेधड़क ष से लिख देना चाहिए; जैसे मनुश्य और मनुख्य दोनों अशुद्ध हैं, मनुष्य शुद्ध है।

अभ्यास—इन शब्दों को अपनी कापी में तीन तीन बार लिखो—वैशाख, आषाढ़, षोडश, पुरुष, विशेष, पौष, शिखर, नख, विष।

(६) हल्

वैसे तो हिन्दी में हल् की विशेष आवश्यकता नहीं होती। बहुतेरे हलन्त शब्द अकारान्त की रीति पर प्रायः लिखे जाते हैं; जैसे भगवान् को भगवान, बुद्धिमान् को बुद्धिमान लिखते हैं, तथापि यदि शुद्ध रूप लिखा जाये तो और भी अच्छा हो। फिर भी कुछ शब्द ऐसे हैं जिन्हें शुद्ध लिखना ही ठीक है। जैसे पृथक्, श्रीमन्।

अभ्यास—निम्न-लिखित शब्दों के अन्तिम अक्षरों में हल् लगाकर अपनी कापियों में लिखो—भाग्यवान, धीमान, राजन, महान, जगत, बृहत, परिषत, हनुमान, धिक।

(७) एकवर्गीय अक्षरों का संयोग

नियम यह है कि किसी भी वर्ग के द्वितीय और चतुर्थ अक्षर का संयोग उसी अक्षर से नहीं होता, उसके पहले उसी वर्ग का प्रथम या तृतीय अक्षर यथाक्रम होना चाहिए, जैसे सिक्ख, बग्घी, अच्छा, गुज्झा, चिट्ठी, सिढ्ढी, पत्थर,

अध्धा, गुफ्फा, भभ्भर शब्द अशुद्ध हैं; सिक्ख, बघ्घी, अच्छा, गुझ्झा, चिट्ठी, सिड्ढी, पत्थर, अद्धा, गुफ्फा, भब्भर होना चाहिए।

अभ्यास—ये शब्द शुद्ध रूप में लिखो—अख्खड़, बिछ्छू, ठठ्ठा, बुध्धि।

(८) अनुस्वार का युक्ताक्षर में परिवर्तन

नियम १—अनुस्वार के परे जिस वर्ग का अक्षर हो उसी वर्ग के पाँचवें अक्षर में अनुस्वार को बदलना चाहिए। 'लंका' शब्द में अनुस्वार के परे क है जो कवर्ग का अक्षर है, इसलिए अनुस्वार को उसी कवर्ग के पाँचवें अक्षर ङ् में बदलकर 'लङ्का' कर सकते हैं; इसी प्रकार

शंख = शङ्ख; गंगा = गङ्गा; जंघा = जङ्घा।

चवर्ग के उदाहरण—पंच = पञ्च; वांछा = वाञ्छा; पंजर = पञ्जर; झंझट = झञ्झट।

टवर्ग के उदाहरण—घंटा = घण्टा; डंठल = डण्ठल; दंड = दण्ड; टंढक = ठण्ढक।

तवर्ग के उदाहरण—शांत = शान्त; मंथन = मन्थन; मंद = मन्द; बंध = बन्ध।

पवर्ग के उदाहरण—चंपा = चम्पा; संफल = सम्फल; अंबा = अम्बा; शंभु = शम्भु।

अब देखा जा सकता है कि घन्टा, चन्चल, आदि शब्द अत्यन्त अशुद्ध हैं।

नियम २—यदि अनुस्वार के परे य र ल व श ष स ह में से कोई अक्षर हो तो अनुस्वार नहीं बदलता, जैसे संयम, संरक्षक, संलग्न, संवत्, संशोधन, संसर्ग, संहति। व को ब समझकर लोग बड़ी अशुद्धियाँ कर देते हैं, जैसे 'स्वयम्बर' शब्द अशुद्ध है; 'स्वयंवर' होना चाहिए। इसी प्रकार 'सन्स्कृत' अशुद्ध है, 'संस्कृत' होना चाहिए।

अभ्यास—(१) इन शब्दों में अनुस्वार को संयुक्ताक्षर में बदलो—शंका, पंखा, भंडार, कांति, संमान, बंजर, बंदर, संगर, भंग, कंबल, संतान, संदेह, इंद्र, शंकर।

(२) इन शब्दों को शुद्ध करो—सम्वत्सर, सन्स्कार, डन्डा, सन्कीर्ण, सन्चार, सन्मुख, सम्कर्षण, सन्शय, सन्की-र्तन, सम्वरण, व्यन्जन।

(९) ऋ और रि का सम्बन्ध

संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं ऋ का प्रयोग नहीं करना चाहिए, कोई कोई लोग 'बृटिश' लिखते हैं जो अशुद्ध है, 'ब्रिटिश' होना चाहिए।

कुछ संस्कृत शब्दों के आदि में, कुछ के मध्य में और कुछ के अन्त में ऋ होती है, जैसे ऋषि, ऋण, ऋतु; पितृव्य, तृण, तृतीय, पृथक्; पितृ, मातृ। व्रज को बृज नहीं लिखना चाहिए।

अभ्यास—ये शब्द तीन बार लिखो—कृषि, दृश्य, दृष्टि, द्रष्टव्य, पृथा (अर्जुन की माता), प्रथा (रवाज); प्रकृति, गृह;

सृष्टि, शृङ्ग, ऋत्त, ऋद्धि, समृद्धि, वृद्धि, त्रिकाल, त्रिदोष, तृतीय, त्रिगुण।

(१०) सन्धि

संस्कृत शब्दों में सन्धि तीन प्रकार की होती है—(१) स्वरसन्धि, (२) व्यञ्जनसन्धि, (३) विसर्गसन्धि। इनके विषय व्याकरण में देखो। यहाँ केवल इतना कहना आवश्यक है कि सन्धि में द्वितीय शब्द के आदि में यदि कोई स्वर है और उस स्वर में कोई व्यञ्जन आकर मिल गया है तो उसे वैसा ही रहने देना चाहिए, जैसे रीति + अनुसार में 'अनुसार' शब्द के 'अ' में त्यू मिलेगा तो 'अ' वैसा ही बना रहेगा, 'आ' नहीं हो जायेगा, शुद्ध रूप रीत्यनुसार होगा, रीत्यानुसार अशुद्ध है। निः + अपराध में 'अ' वैसाही रहेगा, और शुद्ध रूप निरपराध होगा, निर्पराध अत्यन्त अशुद्ध है।

अभ्यास—अपनी कापियों में निम्नलिखित शब्द पाँच पाँच बार लिखो—उपर्युक्त, दुर्गति, निरुत्साह, बुद्ध्यनुसार, मत्यनुसार, बुद्ध्यात्मक, जात्यनुसार, नीत्युपदेश, इत्यादि।

(११) शब्दों के अन्त में प्रत्यय

(१) ता, त्व आदि प्रत्यय जोड़ने में देख लेना चाहिए कि शब्द के अन्त में स्वर है या व्यञ्जन है; जैसा हो वैसा ही रूप रखना चाहिए; जैसे आवश्यक से आवश्यकता (आवश्यक्ता अशुद्ध है); पृथक् से पृथक्त्व (पृथकत्व अशुद्ध है)।

(२) संस्कृत के सब भाववाचक प्रत्ययों का यथेष्ट ज्ञान न होने के कारण प्रायः छात्र लोग एक भाववाचक प्रत्यय लगे हुए शब्द में दूसरा प्रत्यय जोड़कर शब्द में अशुद्धि कर देते हैं। जैसे 'अभाव' शब्द में 'ता' जोड़कर 'अभावता' लिखना अशुद्ध है। तुम पूछ सकते हो कि क्या 'महानुभावता' शब्द भी अशुद्ध है। उत्तर में हम कहेंगे कि 'महानुभावता' शब्द शुद्ध है। कारण भी सुनो। संस्कृत के 'भू' धातु में भाव-वाचक 'घञ्' प्रत्यय लगने से 'भाव' शब्द बना; इसके पूर्व 'अ' लगाने से इसका विपरीत अर्थ हो गया, परन्तु शब्द भाव-वाचक ही बना रहा। 'अनुभाव' शब्द में भी भाववाचक प्रत्यय लग चुका है, परन्तु जब समास में "महान् है अनुभाव जिसका वह महानुभाव है" इस अर्थ में 'महा' शब्द जुड़ा तब 'महानुभाव' शब्द विशेषण हो गया और उससे भाववाचक शब्द बनाने में 'ता' जोड़ा गया। इसी प्रकार 'रोग' शब्द भाववाचक है, "न हो रोग जिसके वह अरोग है" इस अर्थ में 'अरोग' शब्द बहुव्रीहि समास के कारण विशेषण हुआ, फिर 'अरोग' का भाव 'आरोग्य' हुआ; अब इसमें 'ता' जोड़कर 'आरोग्यता' बनाना अशुद्ध है।

इसी प्रकार आलस्य, ऐक्य, असंतोष, साफल्य, सौभाग्य आदि में 'ता' जोड़कर आलस्यता, ऐक्यता, आदि रूप बनाना अनुचित है।

'ता' लगे हुए संस्कृत के भाववाचक शब्दों में हिन्दी का

'ई' प्रत्यय जोड़ना तो और भी अशुद्ध है; जैसे कठिनता, दुष्टता आदि में 'ई' जोड़कर कठिनताई, दुष्टताई बनाना अनर्गल है।

जिन शब्दों के अन्त में 'य' होता है उनमें 'ई' या 'इनी' जोड़कर 'यी' और 'यिनी' के स्थान में लोग प्रमाद से 'ई' और 'इनी' लिख देते हैं; जैसे न्याय से न्यायी (न्याई नहीं); वाजपेय से वाजपेयी (वाजपेई नहीं); व्यय से व्ययी, अतिव्ययी, परिमितव्ययी (व्यई नहीं), विनय से विनयी (विनई नहीं), विजय से विजयी, होना चाहिए। अन्य प्रत्ययों में भी इसका ध्यान रखना चाहिए; जैसे समय से सामयिक (सामइक नहीं); न्याय से नैयायिक (नैयाइक नहीं); नायक से नायिका (नाइका नहीं) आदि।

अभ्यास—निम्नलिखित शब्द क्यों अशुद्ध हैं? इनके शुद्ध रूप लिखो—शान्तिता, आदरता, न्यून्ता, ग़रीबता, लावण्यता, गौरवता, औदार्यता, सिद्धिता, कुटिलताई, परिचई, अल्पव्यइता, गाइका, लालाइत।

(१२) रेफ, रकार और शब्द के आदि में सकार के सम्बन्ध में

छात्रों की लिखी कापियों की परीक्षा में अनेक शब्द ऐसे मिलते हैं जिनमें 'र' और 'स' में बड़ी अशुद्धियाँ होती हैं।

(१) स्वरयुक्त र के स्थान में रेफ;

(२) र के पूर्व स्वर का अभाव;

(३) अकारान्त स के स्थान में हल् स् ;

(४) शब्द के आदि में स के साथ किसी अक्षर का संयोग होने पर उसके पहले स्वर लगाना; इससे विपरीत क्रिया करना।

कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं—

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
मनोर्थ	मनोरथ	अस्मर्थ	असमर्थ
निर्पराध	निरपराध	स्मंजस	असमंजस
निवार्णार्थ	निवारणार्थ	इस्त्री	स्त्री
प्रमात्मा	परमात्मा	अस्नान	स्नान
प्रन्तु	परन्तु	इस्कूल	स्कूल
ब्राजमान	विराजमान	स्पताल	अस्पताल
स्मर्ण	स्मरण	परसपर	परस्पर

अभ्यास—ऊपर लिखे शब्दों के शुद्ध रूप अपनी कापी में तीन तीन वार लिखो; हर शब्द का शुद्ध उच्चारण पाँच पाँच वार करो।

उपसंहार—इतने नियम जानकर भी तुमको अभ्यास तथा स्मरण-शक्ति पर भरोसा करना चाहिए। यदि शब्दों का उच्चारण ठीक ठीक करने की आदत डालोगे तो शब्दों के लिखने में अशुद्धियाँ नहीं होंगी।

अध्याय ३

शब्द-शुद्धि

जो कुछ कान से सुनाई दे वह शब्द है। मनुष्य, पशु, पत्ती आदि जीवों से; ढोल, सितार, झाँझ आदि बाजों से तथा चीज़ों के सङ्घर्ष से जो अनेक प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं वे सभी शब्द हैं। उनमें भेद यह है कि मनुष्य की बोली हम समझ सकते हैं, अर्थात् हमारे लिए उसका कोई अर्थ होता है; वह व्यक्त होती है अर्थात् उसमें अक्षरों की ध्वनियाँ अलग अलग स्पष्ट सुनाई देती हैं। इसी लिए हम कहते हैं कि मनुष्य की बोली सार्थक होती है। मनुष्य निरर्थक बोली भी बोल सकता है, जैसे पागलपन की दशा में; या अपने भाव में कोई विशेषता लाने या भाड़ देने के लिए, जैसे 'पानी वानी कुछ नहीं मिलता' में 'वानी' शब्द निरर्थक होने पर भी पानी शब्द के भाव में विशेषता उत्पन्न करता है। रचना में केवल सार्थक शब्दों का प्रयोग होता है; निरर्थक शब्द भी जब कभी किसी विशेष अभिप्राय से आते हैं तो सार्थक ही की श्रेणी में आ जाते हैं।

आधुनिक हिन्दी भाषा में कई प्रकार के शब्द आते हैं, अर्थात् (१) संस्कृत के शुद्ध शब्द या उनके बिगड़े हुए रूप;

(२) ठेठ देशी शब्द जो सम्भवतः संस्कृत या पुरानी प्राकृत भाषा या फ़ारसी आदि के अत्यन्त बिगड़े रूप हैं, यहाँ तक कि उनकी उत्पत्ति का ठीक ठीक पता नहीं चलता; (३) फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी आदि विदेशी भाषाओं के शुद्ध शब्द या उनके बिगड़े हुए रूप। संस्कृत के जो शुद्ध शब्द आते हैं उन्हें 'तत्सम' शब्द कहते हैं; और जो बिगड़े हुए रूप आते हैं अर्थात् अपभ्रंश होते हैं उन्हें 'तद्भव' शब्द कहते हैं। फ़ारसी, अरबी, अँगरेज़ी, आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों में भी तत्सम और तद्भव का भेद होता है। नीचे के उदाहरण देखो:—

(१) संस्कृत के तत्सम शब्द—मनुष्य, देह, मस्तक, फल, गृह, देवता, वस्त्र, पात्र, पुस्तक, लेखनी, अनुभव, सुख, श्री, इति, यथा, सुवर्ण, पृथक्, वृथा, व्यय, ईश्वर।

(२) संस्कृत के तद्भव शब्द—मनई, मूड, घर, कपड़ा, पोथी, पन्ना, पीठ, पढ़ना (पठ्), पाँच, कान, नाक, बिगाड़, सोना, ऊपर, बाहर, मुगदर, थाली।

(३) देशी शब्द—लोटा, कटोरा, जूता, कलाई, फुनगी।

(४) फ़ारसी के तत्सम शब्द—गवाह, गुलाब, दाना, आमदनी, सिक्का, लगाम।

(५) फ़ारसी के तद्भव शब्द—मँजूर, रवन्ना, बकसीस।

(६) अरबी के तत्सम शब्द—ज़रूरत, ग़रीब, काग़ज़, मुद्दई, बुख़ार, मिसाल, तजवीज़, हुक्म, मकान, मदर्सा।

(७) अरबी के तद्भव शब्द—विदा, कागद, नगद।

(८) अँगरेज़ी आदि योरपीय भाषाओं के तत्सम शब्द—स्टेशन, पार्सल, स्कूल, पेंसिल, स्लेट।

(९) अँगरेज़ी आदि के तद्भव शब्द—गिलास, बकस, चिक, सम्मन, डिप्टी, जज्ज, लाट, बोतल, लालटेन।

हिन्दी में किन शब्दों का प्रयोग करना चाहिए—यथार्थ पूछो तो हिन्दी और उर्दू में इतना अधिक अन्तर पहले नहीं था; देश-भाषा एक थी, उसमें सभी प्रकार के प्रचलित शब्द आते थे; सभी जातियों के लोग उसका एक ही तरह प्रयोग करते थे; दो लिपियाँ होने से भाषा में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। ज्यों ज्यों उसकी वृद्धि होती गई, उसका भण्डार संस्कृत तथा अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं के शब्दों से भरता गया। एक ही अर्थ में कई भाषाओं के शब्द आ गये तो स्वभावतः संस्कृतज्ञ लोग संस्कृत-शब्दों का तथा फ़ारसी-अरबी-दाँ फ़ारसी-अरबी शब्दों का विशेष आदर करने लगे; और हिन्दी-उर्दू दो भाषाएँ मानी जाने लगीं। फिर भी वाक्य में शब्द-विन्यास का क्रम दोनों में समान ही है। बोलचाल की सरल भाषा सभी लोग समझते हैं, उसमें यदि संस्कृत या अरबी-फ़ारसी के क्लिष्ट शब्दों की मात्रा अधिक न हो तो सम्भवतः उर्दू और हिन्दी का मेल हो सकता है। परन्तु उसकी सीमा साधारण बोलचाल तक ही हो सकती है; सूक्ष्म भावों के प्रकट करने के लिए उसमें या तो संस्कृत के शब्द लाने पड़ते हैं

या अरबी-फ़ारसी के; उस दशा में हिंदी और उर्दू दो भाषाएँ हो जाती हैं।

इसी स्वाभाविक नियम के अनुसार हमें चलना चाहिए, अर्थात् प्रतिदिन के काम-काज में आनेवाली साधारण बोल-चाल की भाषा सरल होनी चाहिए, उसमें सरल संस्कृत या फ़ारसी-अरबी के शब्द आ सकते हैं। परन्तु साहित्यिक हिन्दी में सूक्ष्म भावों के प्रकट करने के लिए संस्कृत के कठिन शब्द लाने ही पड़ेंगे। तथापि जहाँ तक हो क्लिष्टता की मात्रा घटानी चाहिए। किसी भाव के प्रकट करने के लिए यदि सरल शब्द मिल सकता है तो क्लिष्ट शब्द क्यों लाया जाय? रह गई अरबी-फ़ारसी के शब्दों की बात, सो मेरी सम्मति तो यह है कि यदि ऐसे शब्द प्रचलित हैं, सबके समझने योग्य हैं, भाव को भली भाँति प्रकट करते हैं तो उन्हें प्रयोग करना बेजा नहीं। यही नहीं, कितने एक शब्द ऐसे हैं जो बराये नहीं जा सकते; जैसे कागज़, बिदा, अदा।

व्युत्पत्ति के विचार से शब्दों के तीन भेद होते हैं—यौगिक, रूढ़ि और योगरूढ़ि; यह विषय व्याकरण की पुस्तक में देखना चाहिए।

फिर शब्दों के नाम (व्यक्तिवाचक, जातिवाचक, भाव-वाचक), सर्वनाम, विशेषण, क्रिया (अकर्मक, सकर्मक), अव्यय (क्रियाविशेषण, सम्बन्धसूचक, समुच्चयवाचक, इंगित-बोधक) आदि भेद तथा उनका विवरण भी व्याकरण की

पुस्तक ही में देखना चाहिए। यहाँ हम केवल उन बातों पर ध्यान आकर्षित करते हैं जिनमें अशुद्धियाँ होने की अधिक सम्भावना होती है।

हर एक शब्द में दो विशेष बातें होती हैं—(१) रूप, और (२) अर्थ। रूप उसकी बनावट का नाम है अर्थात् यह कि वह किस भाषा का शब्द है; किस धातु से क्या मिलाकर बना है; संज्ञा है, क्रिया है या अव्यय है; उसका क्या लिंग है, आदि। अर्थ से प्रकट होता है कि वह किस भाव के जतलाने के लिए प्रयोग में आता है। शब्दों के रूप तथा अर्थ का विवरण अलग अलग दिया जाता है।

रूप

चूँकि हिन्दी में कई भाषाओं के शब्द आते हैं, इसलिए हर भाषा के शब्दों के रूपों का विवरण अलग अलग देने में अधिक सुभीता होगा।

संस्कृत के शब्द

हिन्दी में जितने संस्कृत के शब्द, तत्सम या तद्भव, आते हैं उतने अन्य किसी भाषा के नहीं आते। इसी लिए संस्कृत को हिन्दी की जननी कहते हैं।

संस्कृत के प्रायः सभी शब्द धातु से बनते हैं। धातु उस मूल रूप को कहते हैं जिसके खण्ड करने की आवश्यकता नहीं होती; जैसे पठ् धातु से पाठ, पठित, पाठक, आदि रूप हैं; कृ धातु से कर, करण, कारण, कर्त्ता, कर्म, क्रिया, कृत, करणीय,

कार्य्य, कर्त्तव्य, कारक, कारयिता, कृति, उपकार, संस्कार, हानिकर, अर्थकरी आदि रूप हैं।

तुमने व्याकरण में पढ़ा होगा कि 'प्रत्यय' किसे कहते हैं। शब्द बनाने के लिए धातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हें कृत् 'प्रत्यय' कहते हैं; और ऐसे बने हुए शब्दों को 'कृदन्त' शब्द कहते हैं। हम यहाँ कुछ मुख्य मुख्य कृत् प्रत्ययों का विवरण देते हैं।

(१) क्त प्रत्यय जिसमें से त रह जाता है और कभी कभी वह भी न में बदल जाता है, या कोई दूसरा रूप ग्रहण करता है। जैसे कृ से कृत, गम् से गत, पठ् से पठित, स्व् से सुप्त, वस् से उषित, वच् से उक्त, भिद् से भिन्न, सिध् से सिद्ध, तृ से तीर्ण आदि। इन शब्दों का अर्थ है किया हुआ, गया हुआ, पढ़ा हुआ, सोया हुआ आदि। हिन्दी में इनका प्रयोग विशेषण की रीति पर होता है। जैसे गत वर्ष, पठित पुस्तक, उक्त कारण, भिन्न पात्र, सिद्ध भोजन आदि। यदि इन शब्दों का शुद्ध संस्कृत स्त्रीलिंग बनाना हो तो आ जोड़ना चाहिए; जैसे 'जेहि पद सुरसरिता परम पुनीता प्रकट भई शिव शीश धरी'। परन्तु हिन्दी में वही रूप दोनों लिङ्गों में आता है, जैसे गत दिन, गत रात्रि।

(२) क्तिन् प्रत्यय जिसमें से ति रह जाता है और कभी कभी वह भी किसी दूसरे अक्षर में बदल जाता है। जैसे कृ से कृति, गम् से गति, वच् से उक्ति, सिध् से सिद्धि आदि।

ये सब शब्द स्त्रीलिंग हैं, और भाववाचक संज्ञा शब्द हैं; जैसे 'मोहन की गति मोहन जाने', 'तुम्हारी सिद्धि को देखकर आश्चर्य होता है'।

(३) ल्युट् प्रत्यय जिसके स्थान में न हो जाता है; जैसे कृ से करण, गम् से गमन, पठ् से पठन, स्वप् से स्वप्न, भिद् से भेदन, तृ से तरण आदि। न से ण हो जाने का नियम तुम पढ़ चुके हो। ये शब्द पुँल्लिङ्ग हैं और भाववाचक संज्ञा शब्द हैं, जैसे तुम्हारा गमन हमको दुःख दे रहा है; लेखन में वह तुमसे अच्छा है।

(४) तव्य, अनीय, य प्रत्यय। जैसे कृ से कर्त्तव्य, करणीय, कार्य; वच् से वक्तव्य, वचनीय, वाच्य आदि। इन शब्दों का प्रयोग विशेषण की रीति से होता है। जब कभी नाम की रीति पर ये आते हैं तब पुँल्लिङ्ग होते हैं, जैसे तुम्हारा कर्त्तव्य यही है, उसका वक्तव्य सुन लो।

(५) तृच् प्रत्यय जिसमें से तृ रह जाता है, जैसे कृ से कर्तृ, हृ से हर्तृ, भुज् से भोक्तृ आदि। संस्कृत में इन शब्दों के कर्त्तृकारक का एकवचन रूप कर्त्ता, हर्ता, भोक्ता, आदि होता है और हिन्दी में प्रायः इन्हीं रूपों का प्रयोग होता है, इनका अर्थ है करनेवाला, हरनेवाला, भोग करनेवाला। स्त्री-लिंग में इन्हीं शब्दों के रूप हैं कर्त्री, हर्त्री, भोक्त्री आदि।

(६) अच् प्रत्यय से अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द बनते हैं, जैसे कृ से कर, चर् से चर आदि।

(७) घञ् प्रत्यय से अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्द बनते हैं; जिनके प्रथम स्वर का गुण हो जाता है, जैसे कृ से कार, बुध् से बोध आदि।

(८) क प्रत्यय जिससे कर्तृवाचक शब्द बनते हैं; जैसे कृ से कारक, हृ से हारक, पठ् से पाठक, लिख् से लेखक, वच् से वाचक आदि। स्त्रीलिंग में कारिका, हारिका, पाठिका, लेखिका आदि।

आगे की तालिका में हम कुछ धातुओं के मुख्य मुख्य कृदन्तरूप, जो हिन्दी में आते हैं, देंगे।

धातु	क्त	क्तिन्	ल्युट्	तव्य	अनीय	य	अच्	घञ्	क	तृच्
गम्	गत	गति	गमन	गंतव्य	गमनीय	गम्य				गन्ता
कृ	कृत	कृति	करण	कर्तव्य	करणीय	कार्य	कर	कार	कारक	कर्ता
बुध्	बुद्ध	बुद्धि	बोधन	बोधव्य	बोधनीय	बोध्य		बोध	बोधक	बोद्धा
ज्ञा	ज्ञात	ज्ञाति	ज्ञान	ज्ञातव्य		ज्ञेय	ज्ञ		ज्ञापक	ज्ञाता
दा	दत्त		दान	दातव्य		देय	द		दायक	दाता
जन्	जात	जाति	जनन				ज		जनक	
हृ	हृत		हरण	हर्तव्य	हरणीय	हार्य	हर	हार	हारक	हर्ता
धृ	धृत	धृति	धरण			धार्य	धर	धार	धारक	धर्ता
नी	नीत	नीति	नयन	नेतव्य		नेय			नायक	नेता
भुज्	भुक्त	भुक्ति	भोजन	भोक्तव्य	भोजनीय	भोज्य				भोक्ता
वच्	उक्त	उक्ति	वचन	वक्तव्य	वचनीय	वाच्य			वाचक	वक्ता

अभी तक हमने केवल ऐसे शब्दों का विचार किया है जो धातु और प्रत्यय से बन जाते हैं। ऐसे शब्द भी होते हैं जिनमें धातु से पूर्व कोई दूसरा सिद्ध शब्द आता है या कोई उपसर्ग आता है। उपसर्ग का हाल तुम व्याकरण में पढ़ चुके होगे।

(क) जल + जन् (धातु—पैदा होना) + प्रत्यय = जलज (कमल)। पाद + पा (धातु—पीना) + प्रत्यय = पादप (पैरों से अर्थात् जड़ों से पीनेवाला, वृक्ष)। भूमि + पाल (धातु—पालना) + प्रत्यय = भूमिपाल (राजा)। हज़ारों शब्द ऐसे होंगे जिनके अन्त में अच्, क, शतृ प्रत्ययान्त शब्द आते हैं—उदाहरण—उरग, हानिकर, कृपाकारक, सृष्टिकर्त्ता, शास्त्रज्ञ, विशेषज्ञ, दैवज्ञ, फलद, सुखद, धनदायक, बुद्धिदायक, अन्नदाता, अनुज, सहज, लज्जाजनक, मनोहर, धनहारक, रोगहर्ता, धरणीधर, धर्मधारक आदि।

(ख) **उपसर्ग** वह अव्यय शब्द है जो धातु और धातु से बने शब्द के पूर्व लगकर उसका अर्थ बदल देता है।

प्र, परा, अप, सम्, निः, दुः, वि, आ, नि, उप, अधि, अनु, अव, परि, अन्तः, आविः आदि उपसर्ग कहलाते हैं।

देखो कि हृ धातु से बने 'हार' या हरण शब्द में विविध उपसर्ग लगाने से विविध अर्थ हो जाते हैं—

प्रहार (मारना), अपहरण (छीन लेना), संहार (नष्ट कर देना), विहार (आनन्द करना), उपहार (नज़र),

अनुहार (नक़ल), आहार (भोजन), परिहार (निवारण), प्रतिहार (द्वारपाल), व्याहार (वि + आ + हार = वचन), उदाहरण, व्यवहार आदि। अन्य उदाहरण भी देखो।

गम—संगम (मिलना), निर्गम (निकलना), आगमन (आना), अनुगमन (पीछे चलना)।

जि—जय, विजय (जीत), पराजय (हार)।

कृ—प्रकरण (अध्याय, प्रसंग), अपकार (बुराई), संस्कार (सुधार), विकार (बिगाड़), आकार (रूप), उपकार (भलाई), अधिकार (बल, अख़्तियार), अनुकरण (नक़ल), परिष्कार (सँवारना), पुरस्कार (इनाम)।

विश्—प्रवेश (पैठना), आवेश (ताव), उपविष्ट (बैठा)।

अभ्यास

(१) किसी धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप देखकर तुम प्रायः उसका क्ति प्रत्ययान्त रूप बना सकते हो; जैसे मत—मति; प्रीत—प्रीति; भक्त—भक्ति आदि। परन्तु कुछ में भिन्नता होती है, जैसे आपन्न—आपत्ति।

(२) ल्युट् प्रत्ययवाले कुछ शब्द और देखो—भवन, चेतन, मन्थन, शोधन, पठन, लेखन, गायन, शयन, जागरण, मरण, मारण, पालन, पोषण, पान, ज्ञान, ज्ञापन आदि।

(३) कुछ घञन्त शब्द और देखो—भाव, पाठ, राग, संहार, संवाद, अभिमान, अभिशाप, संसार, अहंकार, आहार, क्षोभ, बोध, रोग, शोक, लोभ, मोह, क्रोध, योग,

भोग, मोद, तोष, शोष, संग, बन्ध, आरंभ, विलम्ब, गन्ध, शेष, उपदेश, प्रवेश, द्वेष।

(४) इन शब्दों के अर्थों में भेद बताओ:—

(क) विलास, अभिलाष; (ख) प्रकाश, अवकाश; (ग) अभिमान, सम्मान; (घ) प्रधान, व्यवधान, परिधान, सन्धान; (ङ) संज्ञा, प्रतिज्ञा, प्रज्ञा, अवज्ञा, अनुज्ञा, आज्ञा; (च) आदान, प्रदान; (छ) प्रग्रह, संग्रह, अनुग्रह, निग्रह, विग्रह, आग्रह; (ज) प्रभाव, अनुभाव, विभाव, आविर्भाव, तिरोभाव; (झ) पराभव, संभव, अनुभव, विभव, अभिभव।

तद्धित

तुम अब देख चुके कि कृत् प्रत्ययों के द्वारा तथा उपसर्गों के द्वारा किस प्रकार शब्दों का भण्डार तैयार होता है। सिद्ध शब्द भी अन्य प्रत्यय ग्रहण करके अपना रूप बदलते हैं। ऐसे प्रत्ययों को **तद्धित प्रत्यय** कहते हैं और इनके द्वारा बने हुए शब्दों को **तद्धितान्त शब्द** कहते हैं। तद्धित का वर्णन तुमने व्याकरण में पढ़ा होगा; यहाँ कुछ मुख्य बातों का स्मरण कराया जाता है:—

(१) अपत्यवाचक—दशरथ का पुत्र दाशरथि, वसुदेव का पुत्र वासुदेव, पृथा का पुत्र पार्थ, धृतराष्ट्र का पुत्र धार्तराष्ट्र, कौशल्या का पुत्र कौशल्येय, सुमित्रा का पुत्र सौमित्रि या सौमित्र, कुशिक का पुत्र कौशिक, सूर्य का पुत्र सौरि,

पर्वत की कन्या पार्वती, केकय की कन्या कैकेयी, मगध की कन्या मागधी।

(२) सम्बन्धवाचक—मत् और वत् प्रत्यय; यदि शब्द के अन्त में या अन्तिम अक्षर से एक अक्षर पूर्व अ हो या म् हो तब तो 'वत्' प्रत्यय जुड़ेगा, अन्यथा 'मत्' जुड़ेगा। इनके रूप पुँल्लिङ्ग में 'मान' और 'वान्' तथा स्त्रीलिङ्ग में 'मती' और 'वती' हो जाते हैं। उदाहरण—धनवान् ('धन' शब्द के अन्त में अ स्वर है), पयस्वान् (पयस् शब्द के अन्तिम अक्षर स् के पूर्व अ स्वर है), लक्ष्मीवान् ('लक्ष्मी' शब्द के अन्तिम अक्षर ई के पूर्व म् है); इसी प्रकार धनवान्, पुत्रवान्, ऐश्वर्यवान्, भगवान्, विद्यावान्, प्रज्ञावान्, कृमिवान्, चमूवान् आदि।

अन्य शब्दों में 'मत्' प्रत्यय जुड़ने से कीर्त्तिमान्, मतिमान्, श्रीमान्, धीमान्,, अंशुमान्, गुरुत्मान् आदि।

स्त्रीलिंग में इन्हीं शब्दों के रूप धनवती, पयस्वती, पुत्रवती, कीर्त्तिमती, श्रीमती आदि होते हैं।

इन् प्रत्यय के लगने से शब्द के अन्त में पुँल्लिङ्ग में ई और स्त्रीलिङ्ग में इनी हो जाता है, जैसे धन + इन् = धनिन्, पुँल्लिङ्ग में धनी, स्त्रीलिङ्ग में धनिनी। इसी प्रकार कर से करी, करिणी; हस्त से हस्ती, हस्तिनी; दण्ड से दण्डी, दण्डिनी; गृह से गृही, गृहिणी; पाप से पापी, पापिनी।

इत प्रत्यय से किसी चीज़ के पैदा होने का भाव समझा

जाता है; स्त्रीलिङ्ग में 'इता' हो जाता है। उदाहरण—जिसे लज्जा पैदा हो वह पुँल्लिङ्ग में लज्जित, स्त्रीलिङ्ग में लज्जिता; जिसे पण्डा (अच्छे बुरे में विवेक करनेवाली बुद्धि) पैदा हो वह पुँल्लिङ्ग में पण्डित, स्त्रीलिङ्ग में पण्डिता। इसी प्रकार तृषा से तृषित, क्षुधा से क्षुधित, कण्टक से कण्टकित, पीड़ा से पीड़ित, उत्कंठा से उत्कंठित, मोह से मोहित।

इक प्रत्यय लगने से शब्द के प्रथम स्वर की वृद्धि हो जाती है, स्त्रीलिङ्ग में 'इकी' रूप हो जाता है। उदाहरण—दिन में होनेवाला दैनिक, स्त्री० दैनिकी; मास में होनेवाला मासिक, स्त्री० मासिकी; इसी प्रकार वर्ष से वार्षिक, वार्षिकी; देह से दैहिक, दैहिकी; भूत से भौतिक, भौतिकी; देव से दैविक, दैविकी; मुख से मौखिक, उदर से औदरिक, यज्ञ से याज्ञिक, पितृ से पैतृक, नगर से नागरिक।

बहुतेरे शब्दों में प्रथम स्वर की वृद्धि हो जाती है। उदा० हरण—शिव का भक्त शैव, विष्णु का भक्त वैष्णव, शक्ति का भक्त शाक्त, लोह से बनी वस्तु लौह, सुवर्ण से बनी वस्तु सौवर्ण, पृथ्वी से बनी वस्तु पार्थिव, कुंकुम से रँगा कपड़ा कौंकुम, बुद्ध को माननेवाला बौद्ध, जिन को माननेवाला जैन।

(३) **भाववाचक**—(१) त्व प्रत्यय से पुँल्लिङ्ग शब्द बनता है; (२) ता प्रत्यय से स्त्रीलिङ्ग शब्द बनता है; (३) इमा प्रत्यय से संस्कृत के अनुसार पुँल्लिङ्ग शब्द बनता है,

परन्तु हिन्दी में उसका प्रयोग स्त्रीलिङ्ग में होता है, (४) प्रथम स्वर की वृद्धि हो जाती है, तथा कुछ अन्य परिवर्तन हो जाता है, ऐसे शब्द पुँल्लिङ्ग होते हैं।

उदाहरण—

शब्द	त्व (पुँ०)	ता (स्त्री०)	इमा (हिन्दी में स्त्री०)	प्रथम स्वर-वृद्धि (पुँल्लिङ्ग)
गुरु	गुरुत्व	गुरुता	गरिमा	गौरव
लघु	लघुत्व	लघुता	लघिमा	लाघव
महत्	महत्व	महत्ता	महिमा	—
पंडित	पंडितत्व	पंडितता	—	पांडित्य
प्रचुर	प्रचुरत्व	प्रचुरता	—	प्राचुर्य्य
सुन्दर	सुन्दरत्व	सुन्दरता	—	सौन्दर्य्य
स्वस्थ	स्वस्थत्व	स्वस्थता	—	स्वास्थ्य
मृदु	मृदुत्व	मृदुता	म्रदिमा	मार्दव

नोट—विशेष स्मरण रखने की बात यह है कि किसी शब्द में दो भाववाचक प्रत्ययों का प्रयोग न होना चाहिए—जैसे सौन्दर्य्यता, लावण्यता, आदि शब्द अशुद्ध हैं।

(४) **फुटकर**—ऊपर लिखे हुए प्रत्ययों के अतिरिक्त अन्य कितने ही प्रत्यय विविध अर्थों में आते हैं; उन सबका विचार यहाँ नहीं हो सकता, दिग्दर्शन के लिए कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

तुलना दिखाने के लिए—पापी, पापीयान् (अधिक पापी),

पापिष्ठ (बहुत अधिक पापी); गुरु, गरीयान्, गरिष्ठ; इसी प्रकार वरीयान्, वरिष्ठ; श्रेयान्, श्रेष्ठ; ज्यायान्, ज्येष्ठ; इन्हीं शब्दों के स्त्रीलिङ्ग रूप पापिनी, पापीयसी, पापिष्ठा; गुर्वी (या गुरु), गरीयसी, गरिष्ठा; वरीयसी, वरिष्ठा, आदि होते हैं जिनका प्रयोग हिन्दी में बहुत कम होता है।

तुलना ही के अर्थ में तर और तम प्रत्ययों का प्रयोग होता है, जैसे स्वच्छ, स्वच्छतर, स्वच्छतम; गाढ़, गाढ़तर, गाढ़तम।

अल्पता दिखाने के लिए क प्रत्यय, जैसे पुत्र से पुत्रक, बाल से बालक, पत्र से पत्रक, पुष्प से पुष्पक आदि। स्त्रीलिङ्ग में इनके रूप पुत्रिका, बालिका, पत्रिका आदि होते हैं।

प्रचुरता, विकार, प्रधानता दिखाने के लिए मय प्रत्यय; जैसे ज्ञानमय, अन्नमय, शब्दमय, सुवर्णमय आदि। स्त्रीलिङ्ग में ज्ञानमयी, अन्नमयी आदि।

संख्या का क्रम दिखाने के लिए—प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश, द्वादश आदि। स्त्रीलिङ्ग में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी आदि।

स्त्री प्रत्यय—इनका विचार हम प्रत्ययों के साथ करते आये हैं। मुख्यतः आ और ई हैं, जैसे—

बाल—बाला	दास—दासी
बालक—बालिका	ब्राह्मण—ब्राह्मणी
श्याम—श्यामा	सुन्दर—सुन्दरी
देव—देवी	नर—नारी

कुछ शब्दों में आनी प्रत्यय आता है, जैसे भव—भवानी, रुद्र—रुद्राणी, शर्व—शर्वाणी, इन्द्र—इन्द्राणी, मातुल—मातुलानी।

व्यवहार में आनेवाले कुछ अन्य शब्द भी हम आगे देते हैं।

जनता—जनों का समूह
पितामह—पिता का पिता
मातामह—माता का पिता
पितृव्य—पिता का भाई
ग्राम्य—ग्राम में होने या रहनेवाला
श्रद्धालु, कृपालु, दयालु—जिसके मन में श्रद्धा, कृपा, दया हो
दन्तुर—बड़े दाँतोंवाला
तुन्दिल—तोंदवाला

दाक्षिणात्य, पाश्चात्य—दक्षिण या पश्चिम का रहनेवाला
सैन्य—सेना का दूसरा रूप
त्रैलोक्य—त्रिलोकी " "
स्वकीय—अपना
परकीय—पराया
भवदीय—आपका
राजकीय—राजा का
आदिम—आदिवाला
अन्तिम—अन्तवाला
सार्वजनीन—सब लोगों का
भस्मसात्—सब ही भस्म

अभ्यास

(१) इन शब्दों के अर्थ बताओ—आत्रेय, द्रौणि, प्रज्ञा-वान, अंशुमान, मेधावी, करी, पिपासित, आह्निक, कांचन, स्थिरता, स्वत्व, काठिन्य, रजतमय, धैर्य्य।

(२) रोहिणी से अपत्यवाचक; बल, कीर्ति, यशस् से सम्बन्धवाचक; सप्ताह से सम्बन्धवाचक (इक); पटु, निपुण, मूर्ख से भाववाचक; सम्पत्तिमान, रूपवान्, शिल्पी, धार्मिक, गर्दभ, सिंह से स्त्रीलिङ्ग बनाओ।

(३) निम्नलिखित शब्द शुद्ध करो—

बुद्धिवान्, बलमान्, प्रथमी।

समास

अभी तक हम उन शब्दों का वर्णन करते रहे हैं जो एक धातु में कृत् प्रत्यय लगाकर या एक सिद्ध शब्द में तद्धित प्रत्यय लगाकर बनते हैं। दो या अधिक सिद्ध शब्द मिलकर भी नये नये शब्द पैदा करते हैं। जिस प्रक्रिया से ऐसे नये शब्द पैदा होते हैं उसका नाम समास है। समास का विस्तृत वर्णन तुम व्याकरण में पढ़ चुके होगे, यहाँ केवल कुछ विशेष बातों का वर्णन हम करेंगे।

समास के छः भेद हैं—(१) अव्ययीभाव, (२) तत्पुरुष, (३) द्विगु, (४) द्वन्द्व, (५) कर्मधारय, (६) बहुव्रीहि। बिना ठीक ठीक अर्थ समझे किसी भी समास का विग्रह नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए 'बहुधन' शब्द लो। इसका क्या अर्थ

प्रातः + भोजन = प्रातर्भोजन

अहः + निश = अहर्निश

अहः + रात्र = अहोरात्र

सारांश

संस्कृत में शब्द इस प्रकार बनते हैं—

(१) धातु + कृत् प्रत्यय; उपसर्ग रहित या उपसर्गसहित

(२) सिद्ध शब्द + तद्धित प्रत्यय

(३) सिद्ध शब्द + सिद्ध शब्द (समास)

अभ्यास

(१) निम्नलिखित समासों का विग्रह करो:—

गृहस्वामी, महाराज, पञ्चरात्र, चन्द्रशेखर, सप्ताह, महेश, त्रिनेत्र ।

(२) इन शब्दों में सन्धि दिखलाओ:—गजानन, लम्बोदर, अनृत, षडानन, निर्विकार, निरुत्तर, समुचित, पूर्वोक्त ।

(३) शुद्ध समास करो:—

एक हो पत्नी जिसके; जीवत् हो मातृ जिसकी; दस रात्रियों का समाहार ।

(४) सन्धि करो:—सम् + गति, प्रति + आघात, निः + कर्ष, मनः + रम, निः + उपद्रव, निः + रोग ।

अरबी फ़ारसी के शब्द

मुसलमानों के चिर सम्पर्क के कारण हज़ारों अरबी और फ़ारसी शब्द हिन्दी-भाषा में, विशेषतः साधारण बोलचाल

की हिन्दी में, प्रयुक्त होते हैं। यद्यपि अरबी फ़ारसी के व्याकरणों के नियमों का समझना कुछ कठिन प्रतीत होगा, तथापि कुछ मोटे मोटे नियम देने की चेष्टा हम करते हैं। इन नियमों के मनन से छात्रों को कुछ ऐसी योग्यता प्राप्त हो सकती है कि एक मूलरूप जानने से उससे बने हुए बहुत से रूप समझ में आ जायँगे।

अरबी में शब्दों के मूलरूप को 'माद्दा' कहते हैं, माद्दा में प्रायः तीन अक्षर होते हैं। इन्हीं तीन अक्षरों में कई रीतियों से अन्य अक्षर जोड़कर विविध रूप बना लिये जाते हैं। रूपों के ढाँचे-से बने होते हैं जिनमें कोई भी 'माद्दा' ढाला जा सकता है। ढाँचे का माद्दा भी तीन अक्षरों का होता है, अर्थात् फ अ ल। इन्हीं तीन अक्षरों में अन्य अक्षर जोड़कर कुछ ढाँचे दिखाये जाते हैं—

फ़ाअल के रूप (हिन्दी में या तो विशेषण या सदा पुँल्लिङ्ग)—साहिब, हाकिम, फ़ाज़िल, नाज़िम, हासिल, मालिक, लायक़, साकिन, वालिद, वारिस, क़ाबिज़, ग़ाफ़िल, बालिग़, नायब, हाज़िर, शामिल, क़ायम, ज़ाहिर।

मफ़ऊल के रूप (हिन्दी में या तो विशेषण या पुँल्लिङ्ग)—मालूम, मक़दूर, मंजूर, मसरूफ़, मज़कूर, मक़सूम, महसूल, मजबूर, मौजूद।

मफ़अल के रूप—(पुँल्लिङ्ग में) मकतब, मदरसा

(मदरसा), मग़रिब; (स्त्रीलिङ्ग में) मसजिद, महफ़िल, मंज़िल, मजलिस, मसनद।

फ़ऊल के रूप (हिन्दी में या तो विशेषण या पुंल्लिङ्ग) क़सूर, रसूल, जनूँन, नजूम, फ़िज़ूल, ज़रूर, शऊर।

तफ़ईल के रूप (हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग)—तजवीज़, तहरीर, तदबीर, तसवीर, तशरीह, तफ़सील, तबदील, तामील, तहसील, तकलीफ़, तरकीब, तहवील, तावील, तारीख़, तारीफ़, तालीम, तसदीक़।

इफ़तत्राल के रूप (हिन्दी में पुंल्लिङ्ग)—इम्तहान, इन्तज़ाम, अख़्तियार, इश्तहार।

फ़िआल के रूप—(पुंल्लिङ्ग में) लिहाज़, हिसाब, मकान, सलाम, कमाल, फ़िराक़, ज़वाल; (स्त्रीलिङ्ग में) मिसाल, किताब।

फ़अलत के रूप (हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग)—ख़िदमत, बरकत, दौलत, मिहनत, मशक्क़त, ज़िल्लत, दावत, हिकमत, फ़ुरसत, क़ुदरत, दहशत, शिरकत, दिक़्क़त, निसबत, रहमत, शुहरत, क़िस्मत।

फ़ईल के रूप (हिन्दी में या तो विशेषण या प्रायः पुंल्लिङ्ग)—नसीब, ग़रीब, फ़क़ीर, क़दीम, जदीद, अमीर, हक़ीर, हकीम, शरीक, रहीम।

फ़अलियत के रूप(हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग)—कैफ़ियत, हैसियत, वक़फ़ियत, मिल्कियत, इल्मियत, असलियत, ख़ैरियत।

फ़िआलत के रूप (हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग)—शिकायत, हिकायत, हिदायत, विलायत, विकालत, समाअत, लियाक़त, किताबत, जिहालत, वकालत, ज़मानत, जमायत, रियासत, हजामत, तिजारत।

फ़ारसी व्याकरण के अधिक नियम देने में सुभीता नहीं है, अतः कुछ प्रचलित रूप दिखाये जाते हैं—

(१) जिन शब्दों के अन्त में स्थानवाचक 'ख़ाना' शब्द हो वे पुँल्लिङ्ग होते हैं, जैसे—दौलतख़ाना, पाख़ाना, जेलख़ाना; शफ़ाख़ाना, मवेशीख़ाना आदि। अनुकरण से हिन्दी शब्द 'कूड़ाख़ाना' आदि भी बनते हैं।

(२) जिन शब्दों के अन्त में सम्बन्धवाचक 'दार' शब्द हो वे या तो विशेषण होते हैं या पुँल्लिङ्ग, जैसे ज़िलेदार, तहसीलदार, रिश्तेदार, वफ़ादार, क़र्ज़दार, मिहराबदार आदि। अनुकरण से हिन्दी शब्द बूटेदार, टोंटीदार, आदि भी बनते हैं।

(३) जिन शब्दों के अन्त में पात्रसूचक 'दान' शब्द हो वे पुँल्लिङ्ग होते हैं, जैसे क़लमदान, इतरदान, रोशनदान, आदि। अनुकरण से हिन्दी शब्द पानदान, गिलौड़ीदान, आदि भी बनते हैं। हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग 'दानी' भी लगा देते हैं, जैसे सुर्मादानी।

(४) स्वभाव-सूचक 'बाज़' जोड़ने से विशेषण या पुँल्लिङ्ग

(ङ) क्रियावाचक—दौड़ता हुआ, पीते पीते आदि ।

(च) विशेषण—जड़ाऊ, अड़ियल, मिलनसार, सुहावना आदि ।

तद्धित

सम्बन्धवाचक—लकड़हारा, चुड़िहार, सँपेड़ा, आमवाला, लोहार, सुनार, बनारसी, लखनउआ, खेतिहर, गाड़ीवान, लखेड़ा, घरेलू, अदालती, भँगेड़ी, जंगली ।

भाववाचक—बुढ़ापा, रँड़ापा, बचपन, भलाई, चिकनाहट, खटास, भाइप ।

अल्पतावाचक—खाट से छोटी खटिया, डिब्बा से छोटी डिबिया, ताल से छोटी तलिया या तलैया, कठौता से छोटी कठौती ।

विशेषण—घरेलू, फुफेरा, भूखा, धुमैला ।

स्त्रीप्रत्यय—कबूतरी, बेटी, गधी, चाची, ऊँटनी, मालिन, बढ़इन, सुकुलाइन, ठकुराइन, जेठानी, खत्रानी, बुढ़िया, कुतिया, रानी ।

समास

अव्ययीभाव—बेधड़क, भरसक, अनजान, भरपूर ।

तत्पुरुष—घुड़सवार, गँठकटा, हथफेर ।

द्वन्द्व—हाथपैर, घरदुआर, दानापानी ।

द्विगु—सतनजा, दसबरना, सतसई ।

कर्मधारय—दहीबड़ा, नीलगाय, कालापानी।

बहुव्रीहि—दोमुहा, दुधमुहा, मुँहफट, सतरंगा।

अभ्यास

हिन्दी के जितने शब्द ऊपर दिये गये हैं उन्हीं के समान रूपवाले एक एक शब्द अपनी कापी में लिखो।

शब्दों के अर्थ

शब्दों का ठीक ठीक अर्थ समझना बड़ा आवश्यक है। बिना ठीक अर्थ जाने न तो वाक्य का भाव हृदयङ्गम होता है, और न रचना में शब्द का प्रयोग ही किया जा सकता है। यह सच है कि कभी कभी पढ़ने में वाक्य में कोई ऐसा शब्द आ जाता है जिससे पढ़नेवाला अपरिचित है, परन्तु अपनी बुद्धि से वह उस शब्द का अर्थ समझ लेता है। इस काम में उस प्रकरण या प्रसंग से पूरी सहायता मिलती है। इससे ज्ञात हुआ कि शब्द का अर्थ ठीक ठीक समझने के लिए प्रकरण जानने की बड़ी आवश्यकता है। यही नहीं, किन्तु एक ही शब्द के अर्थ भिन्न भिन्न प्रकरणों में भिन्न भिन्न होते हैं। जैसे अध्यापक शिष्य से पूछता है "तुम्हारे पास कितने क़लम हैं?" मालिक अपने बाग़ के माली से पूछता है "तुम्हारे पास कितने क़लम हैं?" प्रथम में 'क़लम' शब्द का अर्थ है 'लेखनी' द्वितीय में 'क़लम' शब्द का अर्थ है 'गुलाब आदि पौधों की कटी हुई शाखा'। इसी प्रकार 'फल' शब्द से मेवा-

फ़रोश आम, अंगूर, केला आदि समझता है; सिपाही अपनी बरछी का लोहनिर्मित अंग समझता है; साधु अपनी तपस्या का सुपरिणाम समझता है।

अर्थ देने की तीन रीतियाँ

अब सोचना चाहिए कि शब्दों या शब्द-समूहों या वाक्यों का अर्थ कितनी तरह समझा या कहा जा सकता है। "घोड़ा खड़ा है" इस वाक्य में 'घोड़ा' शब्द का अर्थ एक आदमी बतलायेगा अश्व, हय, अस्प, हार्स; दूसरा आदमी कहेगा कि हिन्दी का 'घोड़ा' शब्द संस्कृत के 'घोटक' शब्द का अपभ्रंश है और 'घोटक' शब्द 'घुट्' धातु से बना है जिसका अर्थ है प्रतिघात करना; इसलिए 'घोड़ा' शब्द का अर्थ है प्रतिघात करनेवाला (पैरों से मारनेवाला); तीसरा आदमी कहेगा कि 'घोड़ा' एक ऐसा प्राणी है जिसके चार पैर होते हैं, सींग नहीं होते, खुर फटे हुए नहीं होते, दाँतों की दो पंक्तियाँ होती हैं, ९-१० से १५-१६ मुट्ठियों तक ऊँचा होता है, रानसवारी और गाड़ी खींचने के काम में आता है। पहला आदमी 'घोड़ा' शब्द का अर्थ उसके **पर्य्यायवाची** शब्दों के द्वारा, अर्थात् वही अर्थ रखनेवाले शब्दों के द्वारा देता है; दूसरा आदमी 'घोड़ा' शब्द की बनावट बतलाकर **व्युत्पत्ति** के द्वारा उसका अर्थ बतलाता है; तीसरा आदमी वे आवश्यक बातें बताता है जिनके द्वारा घोड़े तथा संसार के अन्य पदार्थों में भेद समझ लिया जाय, अर्थात् वह घोड़े का **लक्षण** बतलाता है। इस

प्रकार शब्द का अर्थ तीन तरह से दिया जा सकता है—(१) पर्य्यायवाची शब्दों के द्वारा, (२) व्युत्पत्ति के द्वारा, और (३) लक्षण के द्वारा।

शब्द की तीन शक्तियाँ

ऊपर लिखी तीनों रीतियों में से चाहे किसी भी रीति से शब्द का अर्थ दिया जाय, परन्तु उससे सिवाय घोड़े के अन्य कोई अर्थ न समझा जायगा। यदि अन्य कोई अर्थ समझ लिया जाय तो या तो अर्थ बतलानेवाले की ग़लती है या सुननेवाले की। इस प्रकार के अर्थ को **वाच्यार्थ** कहते हैं अर्थात् शब्द का सीधा सीधा अर्थ जो शब्द के सुनने-मात्र से विदित हो जाता है। वाच्यार्थ कैसे मालूम होता है? हम उत्तर में कहेंगे कि शब्द में ऐसी शक्ति है कि वह अपना वाच्यार्थ बतला देता है। इस शक्ति का नाम **अभिधा** है। इसके अतिरिक्त शब्द में दो शक्तियाँ और होती हैं जिनका वर्णन हम आगे करते हैं।

पतिव्रता स्त्री ईश्वर से प्रार्थना करती है कि मेरी चूड़ियाँ बनाये रख; सेनापति अपने सिपाहियों को उत्तेजित करता है कि इस झंडे के लिए प्राण तक दे देने में संकोच न करो; एक दानी कहता है कि तवे का शब्द बहुत दूर तक जाता है; एक लेखक कहता है कि मैंने क़लम से सारे संसार को जीत लिया। इन वाक्यों का अभिप्राय क्या है? पुरानी चूड़ियाँ टूटती जाती हैं, और उनके स्थान में नई आती जाती हैं; फिर

भी चूड़ियों जैसी अल्पमूल्य वस्तु के लिए इतनी चिन्ता क्यों हो ? बात तो यह है कि पतिव्रता स्त्री चूड़ियों के लिए वरदान नहीं माँगती, किन्तु चूड़ी लक्षण है सौभाग्यवती या सधवा स्त्री का, अतः वह चाहती है कि उसका यह लक्षण बना रहे, अर्थात् वह सधवा बनी रहे, और उसका पति जीवित रहे। इसी प्रकार झंडे जैसी निर्जीव वस्तु के लिए प्राण देना मूर्खता है; झंडे से अभिप्राय है राज्य या राजा की प्रतिष्ठा, जिसके लिए प्राण तक दे देना उचित है। तवे का शब्द = तवे पर बनी रोटी का शब्द = रोटी खानेवालों के द्वारा फैली हुई कीर्त्ति = जो व्यक्ति अतिथियों को उदारतापूर्वक भोजन कराता है उसकी कीर्त्ति दूर तक फैल जाती है। क़लम से संसार नहीं जीता जा सकता; तात्पर्य है क़लम से लिखे ग्रन्थों के भावों से। इन उदाहरणों में चूड़ी, झंडा, तवा, क़लम शब्दों का वाच्यार्थ नहीं ग्रहण किया गया, किन्तु उनसे संबद्ध अन्य पदार्थों का ग्रहण किया गया है। ऐसे अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं; और शब्द की जिस शक्ति से लक्ष्यार्थ लिया जा सकता है उसे **लक्षणा** कहते हैं।

लक्षणा से भी बलवती एक शक्ति शब्द में होती है। एक आदमी सवेरे ५ बजे की ट्रेन से कहीं जानेवाला है; उसका साथी उसे जगाकर कहता है 'अजी चार बज गये'। आशय है कि यदि और सोवोगे तो ट्रेन नहीं मिल सकेगी, इसलिए अब उठकर चलने की तैयारी करो। इस वाच्यार्थ का कोई भी

शब्द उसके वाक्य में नहीं है, परन्तु भाव ठीक ठीक समझ लिया गया। "कहेउ लषण मुनि शील तुम्हारा, को नहिं जान विदित संसारा"—अभिधा से इसका सीधा अर्थ यह है कि "हे मुने, संसार में तुम्हारा **शील** कौन नहीं जानता?" परन्तु आशय इसके विपरीत है; आशय है कि संसार में तुम्हारी **दुःशीलता** प्रत्येक जन जानता है। यहाँ शील का अर्थ दुःशीलता है, जो कि वाच्यार्थ के विपरीत है। ऐसे अर्थ को **व्यंग्यार्थ** कहते हैं, और शब्द की जिस शक्ति से व्यंग्यार्थ लिया जाता है उसे **व्यञ्जना** कहते हैं। व्यंग्यार्थ का दूसरा नाम **ध्वनि** भी है।

वाच्यार्थ में कोई चमत्कार नहीं होता; लक्ष्यार्थ में कुछ चमत्कार होता है; व्यंग्यार्थ में विशेष चमत्कार होता है। अच्छे लेखकों और कवियों की उक्ति में विशेष आनन्द का कारण व्यञ्जना ही है।

आचार्यों ने लक्षणा और व्यञ्जना के हज़ारों-लाखों भेद माने हैं; परन्तु यहाँ इतना बारीक विवरण नहीं दिया जा सकता। ऊपर की बातों का सारांश हम नीचे देते हैं।

शब्दों में अर्थ देने की तीन प्रकार की शक्ति होती है—(१) अभिधा, (२) लक्षणा, (३) व्यञ्जना।

जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया के संकेत करने के लिए जो शब्द नियत कर लिये गये हैं उन शब्दों से उन्हीं सांकेतिक वस्तुओं का ज्ञान शब्द की अभिधाशक्ति से होता है। ऐसे अर्थ को वाच्यार्थ कहते हैं।

यदि शब्द का वाच्यार्थ न लेकर उसके सम्बन्धवाला कोई अर्थ ग्रहण करें तो वह लक्ष्यार्थ कहलाता है और शब्द की यह शक्ति लक्षणा कहलाती है।

यदि शब्दों का सांकेतिक अर्थ तथा उसके सम्बन्धवाला अर्थ भी न लिया जाय, किन्तु कुछ अन्य अर्थ लिया जाय तो वह व्यंग्यार्थ कहलाता है; उसी को ध्वनि भी कहते हैं; शब्द की यह शक्ति व्यञ्जना कहलाती है।

शब्द का वाच्यार्थ तीन प्रकार से दिया जा सकता है—(१) पर्य्याय से, (२) व्युत्पत्ति से, (३) लक्षण या परिभाषा से। इनमें से व्युत्पत्ति का कुछ वर्णन हम पहले कर चुके हैं; यहाँ पर्य्याय की कुछ विशेष बातें बतलाई जाती हैं।

किसी शब्द का पर्य्यायवाची दूसरा शब्द होता ही नहीं, जैसे 'तमाखू' शब्द का पर्य्यायवाची शब्द हम नहीं जानते; किसी शब्द का एक, किसी के दो, किसी के अनेक पर्य्यायवाची शब्द होते हैं; संस्कृत में जल, कमल, पृथ्वी, आदि के लिए अनेक पर्य्यायवाची शब्द हैं जो 'अमरकोश' आदि कोशों में दिये हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि किसी एक शब्द के पर्य्यायवाची जितने शब्द होते हैं सब का ठीक ठीक वही अर्थ नहीं होता; कुछ न कुछ अन्तर होता है, जैसे दया और कृपा पर्य्यायवाची शब्द हैं, परन्तु उनके भावों में कुछ अन्तर है; किसी को किसी बुरी हालत में देखकर 'दया' आती है,

परन्तु किसी के साथ कोई भलाई करने की चेष्टा 'कृपा' कहलाती है।

शब्दों के विपरीत अर्थ देने से भी भाव का ज्ञान हो जाता है, जैसे 'पुण्य' शब्द का भाव 'पाप' शब्द से उलटा है। बहुतेरे शब्दों का विपरीत भाव अन्य शब्दों के द्वारा दिया जा सकता है; परन्तु प्राय: व्यञ्जन से प्रारम्भ होनेवाले शब्दों में अ और स्वर से प्रारम्भ होनेवाले शब्दों में अन् जोड़ने से विपरीत भाव प्रकट हो जाता है; जैसे चर, अचर, एक, अनेक। उपसर्गभेद से भी विपरीतता हो सकती है, जैसे संयोग, वियोग।

अनेकार्थक शब्दों के बहुत से अर्थ होते हैं; जैसे 'पय' शब्द के अर्थ पानी, और दूध; 'पतङ्ग' शब्द के अर्थ पक्षी, सूर्य, कीड़े-मकोड़े, काग़ज़ की बनी चङ्ग। संस्कृत के 'मेदिनी' आदि कोशों में ऐसे ही शब्दों का संग्रह है। वाक्य में ऐसे शब्द का अर्थ प्रकरण से जाना जाता है।

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो रूप में प्राय: समान होते हैं, परन्तु अर्थ में बड़ा अन्तर रखते हैं; जैसे सकल, शकल (संस्कृत), सकल = सम्पूर्ण, पूरा; शकल = टुकड़ा, अंश। ऐसे शब्दों के प्रयोग में बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जिनके कई रूप होते हैं; जैसे विहग, विहंग, विहंगम; प्रतिकार, प्रतीकार।

कुछ शब्द अपना विशेष रूढ़ अर्थ रखते हैं; जैसे 'प्रज्ञा-

चक्षु' शब्द का अर्थ है 'ज्ञान की आँखवाला'; परन्तु वह अन्धे के लिए ही प्रयुक्त होता है।

कुछ शब्द आदरार्थक ऐसे हैं जिनका प्रयोग विशेष लोगों के लिए होता है; जैसे 'पण्डित' शब्द का प्रयोग साधारणतया ब्राह्मणों ही के लिए होता है।

इसी प्रकार की कितनी ही विशेषताएँ शब्दों के प्रयोग में होती हैं। यद्यपि इन बातों का पूरा ज्ञान व्यवहार से, अभ्यास से, तथा सद्ग्रंथ पढ़ने से होता है, तथापि इस 'रचना' के ग्रंथ में इनका कुछ वर्णन दिग्दर्शन के लिए आवश्यक है।

अब हम उपर्युक्त बातों का थोड़ा थोड़ा विवरण नीचे देते हैं।

(१) पर्य्यायवाची या प्रतिशब्द

अग्नि—वह्नि, ज्वलन, कृशानु, पावक, अनल, दहन, वैश्वानर।

अश्व—तुरङ्ग, वाजि, हय, घोटक।

आकाश—अभ्र, व्योम, अम्बर, नभ, अन्तरिक्ष, गगन, ख।

आनन्द—मोद, प्रमोद, प्रमद, हर्ष, आमोद, सुख, शर्म।

इच्छा—कांक्षा, स्पृहा, ईहा, वाञ्छा, लिप्सा, मनोरथ, काम, अभिलाषा, लालसा।

ईश्वर—प्रभु, परमात्मा, ब्रह्म, परब्रह्म, ईश।

कमल—उत्पल, कुवलय, इन्दीवर, पद्म, नलिन, अरविन्द, शतपत्र, तामरस, सरसीरुह, राजीव, पुष्कर, अम्भोज, अब्ज, जलज।

काम—मदन, मन्मथ, मार, कन्दर्प, अनङ्ग, पञ्चशर, स्मर, मनोज, रतिपति।

किरण—कर, मरीचि, मयूख, अंशु।

क्रोध—कोप, अमर्ष, रोष।

गंगा—विष्णुपदी, जाह्नवी, सुरनदी, भागीरथी।

गणेश—विनायक, विघ्नराज, एकदन्त, गजानन, गणाधिप।

गर्दभ—रासभ, खर, वैशाखनन्दन।

गृह—गेह, वेश्म, सद्म, निकेतन, सदन, भवन, आगार, मन्दिर, अयन, आयतन।

घृत—आज्य, सर्पि, हव्य।

चन्द्र—चन्द्रमा, हिमांशु, इन्दु, विधु, निशापति, सोम, मृगांक, कलानिधि।

चरण—पाद, अंघ्रि।

जल—वारि, सलिल, पय, अमृत, जीवन, वन, उदक, तोय, पानीय, नीर, अम्बु, अप्।

दिन—अहन्, दिवस, वासर।

दुग्ध—क्षीर, पय।

दुर्गा—उमा, गौरी, शिवा, भवानी, पार्वती, गिरिजा।

देव—देवता, अमर, त्रिदश, विबुध, सुर, आदित्य, गीर्वाण।

देह—कलेवर, वपु, शरीर, विग्रह, काय, तनु, मूर्ति।

दैत्य—असुर, दनुज, दानव।

नदी—सरिता, तरङ्गिणी, निम्नगा, आपगा, तटिनी।

पक्षी—शकुन्त, शकुनि, द्विज, पतङ्ग, अंडज।

पंडित—विद्वान्, सुधी, कोविद, बुध, धीर, मनीषी, प्राज्ञ, विचक्षण।

पर्वत—अद्रि, गिरि, अचल, शैल, नग।

पात्र—भाण्ड, भाजन।

प्रस्तर—पाषाण, उपल, अश्म।

पृथ्वी—भू, भूमि, अचला, धरा, धरित्री, धरणी, क्षोणी, क्षिति, वसुमती, वसुधा, वसुन्धरा, उर्वी, अवनि, मेदिनी, मही, धात्री, जगती।

पुष्प—प्रसून, कुसुम, सुमनस।

ब्रह्मा—पितामह, स्वयंभू, चतुरानन, विरञ्चि, विधाता, विधि।

ब्राह्मण—द्विज, भूदेव, विप्र, अग्रजन्मा।

भ्रमर—मधुकर, भृंग, षट्पद, अलि, द्विरेफ।

मदिरा—सुरा, वारुणी।

मनुष्य—मानुष, मनुज, मानव, नर, पुरुष, मर्त्य।

मस्तक—शिर, शीर्ष, उत्तमाङ्ग।

मार्ग—अध्व, पथ, सरणि, वर्त्म।

मित्र—वयस्य, सखा, सुहृद्।

मुख—वक्त्र, वदन, आनन।

मूर्ख—अज्ञ, मूढ़, बालिश।

मेघ—अभ्र, जलधर, वारिद, घन।

रक्त—रुधिर, लोहित, शोणित।

राजा—पार्थिव, नृप, भूप, महीप।

रात्रि—निशा, रजनी, शर्वरी।

लक्ष्मी—पद्मा, कमला, श्री, इन्दिरा, मा, रमा।

वर्ष—वत्सर, अब्द, हायन।

वस्त्र—वसन, अंशुक, पट, चैल, आच्छादन।

वायु—अनिल, समीर, मारुत, समीरण, वात, पवन।

विद्युत्—तडित, चञ्चला, सौदामिनी, क्षणप्रभा।

विष्णु—नारायण, दामोदर, हृषीकेश, केशव, माधव, गोविन्द, गरुड़ध्वज, अच्युत, जनार्दन, चक्रपाणि, विश्वम्भर, मुकुन्द।

वृषभ—वृष, बलीवर्द।

शत्रु—रिपु, वैरी, अरि, विपक्षी, अमित्र, परिपन्थी।

शिव—शम्भु, ईश, पशुपति, शर्व, ईशान, शंकर, चन्द्रशेखर, गिरीश, मृड, मृत्युंजय, महादेव, त्रिलोचन, हर, त्रिपुरांतक, गंगाधर, वृषध्वज, रुद्र, उमापति।

समय—काल, वेला।

समुद्र—अब्धि, पारावार, उदधि, सिन्धु, सागर, अर्णव, वारीश।

सर्प—भुजंग, अहि, विषधर, व्याल, फणी, उरग, पन्नग, नाग।

सिंह—मृगेन्द्र, केसरी, हरि, पञ्चमुख।

सुवर्ण—स्वर्ण, कनक, हिरण्य, हेम, हाटक।

सूर्य—सूर, आदित्य, दिवाकर, भास्कर, प्रभाकर, अर्क, मार्तण्ड, रवि, तरणि, भानु, सहस्रांशु।

स्त्री—अबला, नारी, वनिता, महिला, अंगना, कामिनी, प्रमदा।

हनुमान्—मारुति, अञ्जनीसुत।

हस्त—कर, पाणि।

हस्ती—दन्ती, द्विप, द्विरद, मतङ्ग, गज, नाग कुञ्जर, करी।

(२) एकार्थक शब्दों में प्रभेद

दया और कृपा—किसी को दुःखी देखकर हृदय पिघल उठता है, वह दया है; छोटों के लिए सहायता करने की इच्छा करना कृपा है।

भ्रम और प्रमाद—सावधान न रहने से जो चूक हो जाय वह भ्रम है; मूर्खता से या जान-बूझकर परवाह न करने से जो चूक हो जाय वह प्रमाद है।

अलौकिक और अस्वाभाविक—जो कुछ लोक या समाज में प्रायः न देखा जाता हो, जैसे रामचन्द्र की पितृभक्ति अलौकिक थी। जो कुछ स्वभाव या प्रकृति या सृष्टिनियम के विरुद्ध हो, जैसे अपने लिए दुःख पैदा करने की चेष्टा मनुष्य के लिए अस्वाभाविक होगी।

ईर्ष्या और द्वेष—दूसरों की उन्नति देखकर अकारण ही

बुरा मानना ईर्ष्या है; यदि दूसरों से घृणा या शत्रुता किसी कारण की जाय तो वह द्वेष है।

मूर्ख, मूढ़, अनभिज्ञ--जिसमें समझने की शक्ति ही न हो वह मूर्ख या मूढ़ है; जिसे समझने या अनुभव करने का अवसर ही न मिला हो वह अनभिज्ञ है।

पुत्र, बालक—अपना लड़का पुत्र है; कोई भी लड़का बालक है।

पत्नी, स्त्री—अपनी स्त्री पत्नी है; कोई भी स्त्री स्त्री है।

श्रद्धा, भक्ति—बड़ों के गुणविशेष के कारण जो अनुराग उत्पन्न हो वह श्रद्धा है; देवता या गुरुजनों में जो प्रेम हो वह भक्ति है।

प्रेम, स्नेह, प्रणय, वात्सल्य—प्रेम या प्रीति साधारण वस्तु है; छोटों के प्रति जो प्रेम है वह स्नेह है, स्त्री के प्रति जो प्रेम है वह प्रणय है; अपने पुत्र, शिष्य, आदि के लिए जो प्रेम है वह वात्सल्य है।

दुःख, खेद, क्षोभ, शोक, विषाद—दुःख साधारण वस्तु है; खेद पछतावे में या निराशा में होता है; क्षोभ कोई अनिष्ट हो जाने पर होता है; शोक उस व्याकुलता का नाम है जो किसी के मर जाने या उसी के समान दुःख से होती है; विषाद उस बड़े दुःख का नाम है जिसमें कर्त्तव्य-ज्ञान नहीं रहता।

लज्जा और ग्लानि—कोई बुरा काम हो जाने से दूसरों को मुँह दिखाने की अनिच्छा लज्जा है; अकेले रहने पर भी यदि वह बात चित्त में खटकती रहे तो वह ग्लानि है।

नोट १—'वि' एक ऐसा विचित्र उपसर्ग है कि कभी तो शब्द का अर्थ उल्टा कर देता है, और कभी शब्द के उसी अर्थ में विशेषता पैदा कर देता है; जैसे—

उलटे अर्थ में

विषम = जो सम न हो
विधवा = जिस स्त्री का धव (पति) न हो
विमल = जिसमें मल न हो
विगुण = जिसमें गुण न हो
विदेश = जो अपना देश न हो
विपक्ष = जो अपने पक्ष का न हो
वियोग = योग का उल्टा

विशेषता के अर्थ में

विजय = विशेष जय
विचित्र = जो अच्छी तरह चित्रित हो
विगत = विशेष रूप से गत
विज्ञापन = अच्छे प्रकार ज्ञापन (जनाना)
विधाता = विशेष रूप से धारण करनेवाला
विश्रम = पूरा श्रम
विशुद्ध = विशेष रूप से शुद्ध

नोट २—निषेधात्मक अ और अन् दो प्रकार से शब्दों के आदि में जोड़े जाते हैं; एक तो उन्हीं शब्दों का विपरीत अर्थ बतलाने के लिए, जैसे ऊपर के शब्द-संग्रह में दिखलाया गया

है, और दूसरे बहुव्रीहि समास में जिससे किसी अन्य का भाव ज्ञात होता है; जैसे 'अपुत्र' शब्द का अर्थ 'पुत्र' का उलटा नहीं है, किन्तु अर्थ है 'जिसके पुत्र न हो'; इसी प्रकार 'आदि' का उलटा 'अनादि' नहीं है, किन्तु 'अनादि' का अर्थ है 'जिसका आदि न हो'; इसी प्रकार अनाथ, अनन्त, असीम आदि शब्द भी हैं। विचार करने से ज्ञात होगा कि पुत्र, आदि, नाथ, अन्त, सीमा शब्द नाम संज्ञा हैं, परन्तु बहुव्रीहि समास के कारण अपुत्र, अनादि, अनाथ, अनन्त, असीम शब्द विशेषण हो गये हैं। यदि इन शब्दों के विपरीत अर्थवाले शब्द देना ही हो तो ऐसे शब्द होंगे पुत्रवान्, आदिमान्, नाथवान्, अन्तवान्, सीमावान्।

बहुव्रीहि समास में इसी प्रकार निर्, वि, आदि उपसर्गों का प्रयोग भी होता है; जैसे निर्धन, निरुत्तर, विमल आदि शब्द बहुव्रीहि के कारण विशेषण हैं और धन, उत्तर, मल आदि शब्दों के विपरीत नहीं हैं, किन्तु धनी, उत्तरवान्, मलिन आदि शब्दों से विपरीत अर्थ प्रकट करते हैं।

स्मरण रहे कि विशेषण का विपरीत अर्थ देनेवाला विशेषण ही होना चाहिए, नाम संज्ञा नहीं। यह विषय सावधानी से मनन करना चाहिए, क्योंकि रचना में यदि तुम ऐसा वाक्य लिखोगे कि "धन और निर्धन दोनों को भोजन की आवश्यकता होती है" तो भारी अशुद्धि करोगे।

(४) अनेकार्थक शब्द

वैसे तो अन्य भाषाओं के शब्द भी कई कई अर्थ रखते हैं, परन्तु संस्कृत के शब्दों में यह बात विशेष रूप से पाई जाती है। 'गो' शब्द के अर्थ देखो—(पुँल्लिङ्ग में) (१) सूर्य, (२) बैल, (३) गोमेध यज्ञ, (४) एक ऋषि का नाम; (स्त्रीलिङ्ग में) (५) दिशा, (६) भारती, (७) भूमि, (८) गाय; (दोनों लिङ्गों में) (९) स्वर्ग, (१०) वज्र, (११) अम्बु, (१२) किरण, (१३) आँख, (१४) बाण, (१५) केश।

चूँकि संस्कृत के सब अर्थों का प्रयोग हिन्दी में नहीं होता, इसलिए नीचे दिये हुए शब्दों के वे ही अर्थ हम लिखेंगे जिनका प्रयोग हिन्दी में होता है।

अङ्क—(१) चिह्न, (२) गोद, (३) १, २, ३, आदि।

अज—ब्रह्मा, दशरथ के पिता, बकरा।

अपवाद—कलंक, किसी नियम का न लगना।

अम्बर—वस्त्र, आकाश।

अर्क—सूर्य, मदार का पौधा।

अर्थ—धन, मतलब।

आली—सखी, पंक्ति।

ईश्वर—महादेव, समर्थ।

उत्तर—जवाब, उत्तरदिशा, पीछे।

कनक—सुवर्ण, धतूरा।

कर—हाथ, किरण, सूँड़, टैक्स।

कला—सोलहवाँ हिस्सा, ६४ कलाएँ।

कोटि—करोड़, गोशा।

कोश (ष)—ख़ज़ाना, शब्दों का कोष।

गुण—सत्व रज तम, हुनर, रस्सी, गुना।

गुरु—गुरू, बड़ा, भारी।

ग्रहण—सूर्य चन्द्र का उपराग, लेना, पकड़ना।

घन—घना, बादल, गणित में किसी संख्या को उसी से दो बार गुणन करना।

चित्र—तसवीर, विचित्र।

जीवन—जीव, जल।

तनु—देह, छोटा।

तात—पिता, भाई, चचा आदि।

दंड—डंडा, सज़ा।

दल—समूह, पत्ता, पक्ष।

द्रव्य—धन, वस्तु।

द्विज—ब्राह्मण, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य, पक्षी, दाँत, चन्द्रमा।

धर्म—जैसे हिन्दूधर्म, स्वभाव।

धात्री—माता, आँवला, पृथ्वी, उपमाता।

नाग—सर्प, हाथी।

निमित्त—हेतु, हीला, शकुन।

पक्ष—महीने का आधा, तरफ़, पंख।

पतंग—पक्षी, सूर्य, पतिंगा, चंग।

पत्र—पत्ता, पंख, चिट्ठी।

पद—पाँव, अधिकार, ओहदा।

पय—जल, दुग्ध।

पात्र—बरतन, स्थान।

पृष्ठ—पीठ, काग़ज़ की पीठ।

पोत—नाव, लड़का।

प्रान्त—सूबा, किनारा।

फल—परिणाम, वृक्ष का फल, तलवार आदि का फल।

बल—ताक़त, सेना, बलराम।

बलि—राजा बलि, बलिदान, उपहार, कर (टैक्स)।

भूत—प्राणी, प्रेत, पृथ्वी आदि पञ्चभूत, बीता हुआ।

मधु—शहद, शराब।

मन्त्र—देवता का मन्त्र, सलाह।

मान—सम्मान, अभिमान, तौल, नाप।

माला—फूलों आदि की माला, समूह।

मित्र—दोस्त, सूर्य।

मुद्रा—रुपया-पैसा, मोहर, शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों को विशेष रीति से रखना।

यम—यमराज, योग का एक अंग।

योग—योगशास्त्र, मिलना।

रश्मि—किरण, रस्सी।

रस—नवरस, षट् रस, दवा, प्रेम, आनन्द, पारा।

राग—प्रेम, रंग, गाने का राग।

वन—जंगल, जल।

वयस्—उमर, पत्ती।

वर—श्रेष्ठ, वरदान, दुलहा।

वर्ण—ब्राह्मण आदि ४ वर्ण, रंग, अक्षर।

विग्रह—लड़ाई, शरीर।

विधि—रीति, ब्रह्मा।

शक्ति—बल, साँग (अस्त्र), दुर्गा आदि शक्तियाँ।

शिव—महादेव, कल्याण।

सत्व—एक गुण, जीव।

सन्तति—लड़के-बाले, सिलसिला।

सन्धि—मिलाना, सुलह।

सर्ग—अध्याय, सृष्टि।

हरि—विष्णु, सूर्य्य, इन्द्र, सिंह, वानर।

(५) रूप में किञ्चित् भिन्न शब्द

अंस—कन्धा; अंश—हिस्सा। अपेक्षा—इच्छा; उपेक्षा—निरादर। अशक्त—जिसमें शक्ति न हो; आसक्त—लगा हुआ, मोहित। आकर—खानि; आकार—सूरत, शकल। छत्र—छतरी; क्षत्र—क्षत्रिय; सत्र—यज्ञ, अन्न आदि बाँटना। छात्र—विद्यार्थी; क्षात्र—क्षत्रिय। तरणी—नौका; तरुणी—युवती। द्विप—हाथी; द्वीप—जज़ीरा। प्रकार—रीति; प्राकार—किले आदि का एक अंग। प्रथा—रीति; पृथा—अर्जुन की माता।

प्रसाद—प्रसन्नता, प्रासाद—महल। बलि—उपहार, कर, दैत्य का नाम; बली—बलवान्; बालि या बाली—एक वानर का नाम। मूल—जड़; मूल्य—दाम, क़ीमत। लक्ष—लाख; लक्ष्य—निशाना, इष्ट। वसन—कपड़ा; व्यसन—बुरी आदत। वाक्य—शब्दसमूह; वाच्य—अर्थ। शंकर—महादेव; संकर—मिला हुआ। शर—बाण; सर—तालाब। शूर—वीर, सूर—सूर्य्य, अन्धा। सकल—पूरा, शकल—खंड। सर्ग—सृष्टि; स्वर्ग—देवताओं का लोक। स्वपच—स्वयम्पाकी; श्वपच—चाण्डाल। ग्रह—सूर्य चन्द्र आदि; गृह—घर।

(६) कई रूपवाले शब्द

(क) इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द जो क्तिन् प्रत्यय से न बने हों प्रायः ईकारान्त रूप में भी शुद्ध होते हैं—अवनि—अवनी (पृथ्वी), अवलि—अवली (पंक्ति)। आलि—आली (सखी); कटि—कटी (कमर)। तरणि—तरणी (नौका)। धरणि—धरणी (पृथ्वी)। धूलि—धूली। भृकुटि—भृकुटी। महि—मही। श्रेणि—श्रेणी।

क्तिन् प्रत्यय से बने शब्द ईकारान्त नहीं हो सकते; जैसे मति, गति, शान्ति, बुद्धि, शुद्धि, नीति, प्रीति, कान्ति आदि।

(ख) जो वद्धितान्त शब्द घञ् प्रत्यय (तथा क्विप् प्रत्यय) से बने हैं उनके पूर्व का उपसर्ग कभी कभी दीर्घ हो जाता है, जैसे प्रतिकार—प्रतीकार, परिहार—परीहार, प्रतिहार—प्रतीहार; परिहास—परीहास।

(ग) श, ष, स के भेद से; जैसे कलश—कलष; किशलय—किसलय; मुशल—मुसल; वशिष्ठ—वसिष्ठ; शायक—सायक; शूकर—सूकर; कोश—कोष।

(घ) फुटकर शब्द—भृकुटि—भ्रुकुटि; मूषक—मूषिक; विहग—विहंग, विहंगम; तुरग—तुरंग, तुरंगम; भुजग—भुजंग, भुजंगम; अपिधान—पिधान; दम्पति—दम्पती; पृथिवी—पृथ्वी; अमावास्या—अमावस्या; पूर्णिमा—पूर्णमासी; तेल—तैल।

(७) विशेष रूढ़िवाले शब्द

प्रज्ञाचक्षु—बुद्धि हो आँख जिसकी, अर्थात् बुद्धिमान्; परन्तु अन्धे ही को प्रज्ञाचक्षु कहते हैं। कल्याणभार्य (हिन्दी का प्रयोग) = जिसकी स्त्री कल्याणवाली हो, इसका प्रयोग ऐसे पुरुष के लिए करते हैं जिसकी स्त्री मर गई हो। देवानांप्रिय = देवताओं को प्यारा, यह शब्द बलि के पशु के लिए आता है। अर्धचन्द्र = आधा चन्द्रमा; यह शब्द गरदनिया देने (हाथ से गर्दन का पिछला भाग पकड़कर ढकेल देने) के अर्थ में आता है। बादशाह का मेहमान—असहयोग आन्दोलन के समय जो लोग कारागार भेजे जाते थे वे अपने को इसी नाम से पुकारते थे।

(८) विशिष्ट आदरार्थक शब्द

पण्डित—प्रायः ब्राह्मणों के लिए

ठाकुर—प्रायः क्षत्रियों के लिए

लाला—इस प्रान्त में प्राय: कायस्थों के लिए; पञ्जाब में अन्य जातियों के लिए भी

मुंशी—प्राय: कायस्थों के लिए

साह—(नाम के पीछे) प्राय: वैश्यों या व्यापारियों के लिए

सरदार—सिक्खों के लिए

मौलवी—मुसलमानों के लिए

बाबू—बङ्गालियों के लिए या दफ़्तर के कर्मचारियों के लिए, या ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों के लिए।

चौधरी—ख़ानदानी शब्द

राय—भाटों के लिए, या जिनको पदवी प्राप्त है।

महन्त—मठों के प्रधानों के लिए

स्वामी—संन्यासियों के लिए

श्रीयुत—हर किसी के लिए

श्रीमान्—बहुत विशिष्ट सम्मान योग्य व्यक्तियों के लिए।

मिस्टर—अँगरेज़ों के लिए, परन्तु अँगरेज़ी पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों के नाम के पूर्व में भी व्यवहार में लगाया जाता है।

नोट १—यदि नाम लेना न हो और इन आदरार्थक शब्दों ही से सम्बोधन करना हो तो पण्डित, लाला, मुंशी, साह, बाबू, चौधरी, राय (भाट के अर्थ में), महन्त, स्वामी शब्दों के पीछे 'जी' शब्द जोड़ा जाता है। ठाकुर, सरदार, मौलवी, राय (पदवी के अर्थ में), शब्दों के अन्त में 'साहब'

शब्द ही अच्छा लगता है। कभी कभी पण्डित, लाला, मुंशी बाबू, चौधरी शब्दों के अन्त में भी 'साहेब' शब्द जोड़ा जाता है।

नोट २—स्त्रियों के लिए ठकुराइन, ललाइन, मुंशिआइन, सौहाइन या साहुन; बबुवाइन, चौधराइन, श्रीयुता, श्रीमती, मिसेज़ आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

कुछ अन्य शब्द भी हैं जो, बिना नाम के, आदरार्थ व्यवहृत होते हैं—

मिस्त्री—लोहार, बढ़ई आदि कारीगरों के लिए।

महरा—कहारों के लिए।

रैदास—चमारों के लिए।

बरेठा—धोबी के लिए।

मियाँ—मुसलमानों के लिए, जब कि मुंशी या मौलवी आदि शब्दों का प्रयोग नहीं होता।

(९) विशेष जीवधारियों तथा वस्तुओं के शब्द

यद्यपि सभी जीवधारियों के शब्द को 'बोलना' कहते हैं, तथापि उनमें भेद करने की दृष्टि से उनके बोलों के लिए भिन्न भिन्न शब्द प्रयुक्त होते हैं।

हाथी चिग्घाड़ता है। ऊँट बलबलाता है। घोड़ा हिनहिनाता है। गधा रेंकता है। गाय बम्बाती है। भैंस चुकड़ती है। कुत्ता भौंकता है। बिल्ली मेउँमेउँ करती है। बकरी मिमियाती है। सुअर घुरघुराता है। सियार हुवा हुवा करता है। शेर

गरजता है। मेंढक टर्र टर्र करता है। तोता पढ़ता है। मैना पढ़ती है। कबूतर गटरगों करता है। कौवा कांव कांव करता है। मुर्ग़ा कुकड़ूकूँ करता है। पपीहा 'पी कहाँ' कहता है। कोयल कुहू कुहू करती है। भौंरा गुञ्जारता है। सांप फुफकारता है। मक्खी भनभनाती है। चिड़िया चहचहाती है।

वस्तुओं के शब्द—पत्ता खटकता या खड़कता है। घड़ी खटखट करती है। गाड़ी घड़घड़ाती है। चारपाई चरचराती है। सांस चलती है। दिल धड़कता है। बादल गरजता है। हवा सनसनाती है। दाँत कटकटाते हैं। पङ्ख फरफराते हैं। तेल छनछनाता है।

(१०) वस्तुओं के हिलने या चलने के लिए उपयुक्त शब्द

झण्डा फहराता है। चील मँडलाती है। बिजली चमकती है। बन्दर खिसियाता है। सांप रेंगता है। नाव डगमगाती है। आँसू डबडबाते हैं। आँखें चौंधियाती हैं। मन डाँवांडोल होता है।

(११) कुछ विशेष संख्याएँ

एक—१ ईश्वर

दो—२ फल (पाप, पुण्य)

तीन—३ काल, ३ गुण, ३ दोष, ३ देव, ३ लोक, ३ अग्नि, ३ ऋण, ३ ताप, ३ काण्ड, ३ राम, ३ वायु के गुण, ३ शिव के नेत्र।

चार—४ वर्ण, ४ आश्रम, ४ युग, ४ फल, ४ वेद, ४ अवस्थाएँ, ४ दिशाएँ, ४ योनियाँ, ४ सेना के अङ्ग, ४ नीति के उपाय, ब्रह्मा के ४ मस्तक, ४ धाम।

पाँच—५ तत्त्व, ५ प्राण, ५ ज्ञान-इन्द्रियाँ, ५ कर्म-इन्द्रियाँ, ५ यज्ञ, पञ्चामृत, ५ काम के बाण, शिव के ५ मस्तक, ५ देवता।

छः—६ ऋतु, शास्त्र, ६ रस, ६ वेदाङ्ग, ६ ईतियाँ, स्कन्द के ६ मुख।

सात—७ ऋषि, ७ लोक, ७ वार, ७ सागर, ७ द्वीप, ७ तल, पृथ्वी के ७ अद्भुत पदार्थ, ७ पर्वत।

आठ—८ वसु, ८ सिद्धियाँ, ८ पहर, ८ योग के अङ्ग।

नव—९ ग्रह, ९ निधियाँ, ९ रस, ९ दुर्गा, ९ प्रकार की भक्ति, ९ नन्द, ९ अङ्क।

दश—१० दिशाएँ, १० इन्द्रियाँ, १० विष्णु के अवतार, रावण के १० मुख।

ग्यारह—११ रुद्र, ११ इन्द्रियाँ।

बारह—१२ महीने, १२ राशियाँ, १२ आदित्य, दर्जन में बारह इकाइयाँ।

चौदह—१४ लोक, १४ विद्याएँ, १४ मनु, १४ रत्न।

पन्द्रह—१५ तिथियाँ।

सोलह—१६ कलाएँ, १६ शृङ्गार, १६ संस्कार, रुपये में आने।

अठारह—१८ पुराण, १८ उपपुराण, १८ विद्याएँ, १८ प्रत्यङ्गिरा देवी की भुजाएँ, १८ स्मृतियाँ, १८ नरक।

बीस—२० नख, रावण के २० हाथ, कौड़ी में २० इकाइयाँ, बीघे में २० बिस्वे।

चौबीस—२४ तत्त्व।

पचीस—२५ तत्त्व, विष्णु के २५ अवतार।

सत्ताईस—२७ नक्षत्र, २७ योग।

तीस—राशि या लग्न में ३० अंश, महीने में ३० दिन।

तैंतीस—३३ देवता।

चालीस—मन में चालीस सेर।

उनचास—पवन।

चौंसठ—६४ कलाएँ।

चौहत्तर—७४ चतुर्युगी (एक मन्वन्तर में)

अस्सी—८० वातविकार।

चौरासी—८४ लक्ष योनियाँ, ८४ आसन।

छानवे—९६ यज्ञोपवीत में चौवों की संख्या।

सौ—१०० वर्ष की मनुष्यायु।

एक सौ आठ—माला में १०८ दाने।

एक सौ बीस—१२० वर्ष की परमायु।

सहस्र—शेष के १००० फण, इन्द्र की १००० आँखें।

(१२) शब्दों के द्वारा संख्याएँ लिखने की विधि

० के लिए 'आकाश' शब्द तथा उसके पर्य्यायवाची शब्द।

१ के लिए पृथ्वी, चन्द्र आदि शब्द।

२ के लिए भुज, युग्म आदि शब्द।

३ के लिए राम, शिवनेत्र, गुण, अग्नि आदि शब्द।

४ के लिए वेद, युग आदि शब्द।

५ के लिए बाण तथा उसके पर्य्यायवाची शब्द।

६ के लिए रस, ऋतु आदि शब्द।

७ के लिए ऋषि, नग, आदि शब्द।

८ के लिए वसु आदि शब्द।

९ के लिए नन्द, ग्रह, अंक आदि शब्द।

पहला शब्द इकाई बतलाता है, दूसरा दहाई, तीसरा सैकड़ा, इसी प्रकार आगे भी। जैसे यह पुस्तक संवत् १९८४ में लिखी जाती है तो पुस्तक के अन्त में कोई छन्द इस प्रकार लिखा जा सकता है—

विक्रमसंवत् वेद वसु, नन्द चन्द्र, नभ मास। (नभ = श्रावण)
शुभ 'रचना-पीयूष' यह हिन्दी भई प्रकास॥

महाकवि बिहारीलाल ने अपनी 'सतसई' के अन्त में ग्रन्थ-समाप्ति का समय इस प्रकार बताया है—

संवत् ग्रह ससि जलधि छिति, छठि तिथि, वासर चन्द।
चैत मास पख कृष्ण में, पूरन आनँदकन्द।

अर्थात् ग्रह ९, ससि १, जलधि ७, छिति १ से बने संवत् १७१९ में ग्रन्थ-समाप्ति हुई।

(१३) दोहरे शब्द

(क) एक ही शब्द की पुनरुक्ति—बार बार, पुनः पुनः, दिन दिन, दिनों दिन, मोटा मोटा (डंडा), आगे आगे, सोच सोच कर, पानी ही पानी, राह राह, नीचे नीचे, कौड़ो कौड़ो, कुछ कुछ, हाथों हाथ।

(ख) किसी शब्द के परे उससे भिन्न परन्तु समानार्थक या निकट सम्बन्धवाला शब्द जोड़ना—धन धान्य, ऋद्धि सिद्धि, घर दुवार, पोथी पत्रा, खाना पीना, नहाना धोना, चलना फिरना, झाड़ना पोछना, देखना भालना, डाँटना फट-कारना, सँवार सिङ्गार, मार पीट, पढ़ाई लिखाई, कपड़े लत्ते, नाच कूद, खेल कूद, गाना बजाना, घास पात, डील डौल, खेत खलियान, नदी नाला, जली भुनी, सभा समाज, छल बल, हाथ पैर, काट छाँट, वज़ा क़ता, छान बीन, दाना पानी, चमक दमक, आमोद प्रमोद, हाट बाज़ार, दान दक्षिणा, श्रद्धा भक्ति, रीति नीति, सेवा शुश्रूषा, हृष्ट पुष्ट, बोल चाल, हरा भरा, अनुनय विनय, आहार विहार, देख रेख, बन्धु बान्धव, बाल बच्चे, चित्र विचित्र, दवा दरमत, जीव जन्तु, क़िस्सा कहानी, आँच परताल, दूध दही, आचार विचार, चाल चलन, संगी साथी, लूट मार, गली घाट, जल वायु।

(ग) किसी शब्द के परे उससे विपरीत अर्थवाला शब्द

जोड़ना—आगे पीछे, दाहिने बायें, आकाश पाताल, नीचे ऊपर, यहाँ वहाँ, भला बुरा, देन लेन, खरी खोटी, चर अचर, स्थावर जङ्गम, धर्माधर्म, सुख दुःख, जमा खर्च, हानि लाभ, छोटे बड़े, पाप पुण्य, आय व्यय, गुण दोष, निन्दा स्तुति, शुभाशुभ, संधि विग्रह, जीवन मरण, हर्ष विषाद, जय पराजय, संपत्ति विपत्ति, स्वर्ग नरक, उदय अस्त, उत्थान पतन, गुणी निर्गुण, धूप छाँह, सुबह शाम, रात दिन, थोड़ा बहुत।

(घ) किसी शब्द के परे उसका अनुकरण-मात्र निरर्थक शब्द जोड़ना—धोना धाना, जोड़ना जाड़ना, खोदना खादना, खेत पात, आमने सामने (पहला शब्द निरर्थक), जोड़ तोड़, नोक झोंक, मेला ठेला, अदल बदल (पहला शब्द निरर्थक), अड़ोस पड़ोस (पहला शब्द निरर्थक), चुप चाप, दौड़ धूप, दाना दनका, सवारी शिकारी, चैन चान, गोल माल।

(१४) शब्दों के लिङ्ग

यह मानी हुई बात है कि अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी का सीखना सरल है। भारत के कोने कोने में इसके जाननेवाले मौजूद हैं। संयुक्त प्रान्त, बिहार, पंजाब, मध्य-प्रान्त, राजपूताना आदि की तो बात ही नहीं, बंगाल, गुज-रात, महाराष्ट्र, मदरास के लोग भी साधारण हिन्दी बोल लेते और समझ लेते हैं। इसी लिए हिन्दी को भारत की राष्ट्र भाषा मानने में आपत्ति नहीं होती। यदि हिन्दी में लिङ्ग की अशुद्धियाँ अन्य प्रान्तवासी करते हैं तो व्यवहार की

दृष्टि से कोई हानि नहीं, क्योंकि भाव स्पष्ट हो जाता है; परन्तु साहित्य की दृष्टि से यह त्रुटि है। हिन्दी में लिङ्ग का बड़ा झगड़ा है। जिन जीवधारियों का जोड़ा होता है वे प्रकृति ही से या तो नर होते हैं या मादा। रचना में उन्हीं के अनुकूल विशेषण, सर्वनाम तथा क्रिया का प्रयोग होता है। इसके भी अपवाद हैं, जैसे दीमक शब्द को सदा स्त्रीलिङ्ग मानते हैं, परन्तु दीमकों में नर और मादा अवश्य होते हैं। इसी प्रकार कीड़ा, मकोड़ा, चींटा, बिच्छू, कौवा आदि शब्द पुँल्लिङ्ग में और चिड़िया, चींटी, छिपकली, गोह आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग में व्यवहृत होते हैं।

बड़ी कठिनता है उन शब्दों में जो निर्जीव वस्तुओं के नाम हैं। हम कैसे जानें कि वे पुँल्लिङ्ग हैं या स्त्रीलिङ्ग? यह भी नहीं कि एक ही वस्तु के जितने नाम हों सबका वही लिङ्ग हो, उदाहरण के लिए देखो घर, गृह, मकान, महल, प्रासाद आदि शब्द पुँल्लिङ्ग हैं और उसी वस्तु के नाम हवेली, बखरी, शाला आदि स्त्रीलिङ्ग हैं। बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनके लिए हिन्दी में संस्कृत से उलटा प्रयोग होता है, जैसे अञ्जलि, तान, शपथ, धातु, जय, मृत्यु, सन्तान, समाज, ऋतु, प्रलय, यश, पोतल, कुशल, पुस्तक, श्वास, अग्नि, वायु, व्याधि, सन्धि, समाधि, निधि, आत्मा, महिमा, देह आदि संस्कृत के पुँल्लिङ्ग शब्द हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग माने जाते हैं, और देवता आदि संस्कृत के स्त्रीलिङ्ग शब्द हिन्दी में पुँल्लिङ्ग माने जाते हैं।

इन कठिनाइयों से बचने का एक-मात्र उपाय है रिवाज। जिस शब्द का जैसा प्रयोग व्यवहार में आता है वही शुद्ध है। परन्तु यह मार्ग भी अत्यन्त निरापद नहीं है। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका लिङ्ग एक स्थान में एक और दूसरे स्थान में दूसरा माना जाता है। फ़िकर, तूती, ढोल आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। यही नहीं, एक ही शब्द का प्रयोग भिन्न भिन्न लेखक भिन्न भिन्न प्रकार से करते हैं। झंझट, कुञ्ज, गेंद, तकिया, गड़बड़, खोज, डुलिया, सन्दूक़, क़लम, आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। देश-भेद से लिङ्ग-भेद का उदाहरण पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के शब्दों में सुनिए—"अगर विहार में 'हाथी विहार करती' है तो पञ्जाब से 'तारें आती' हैं और संयुक्त-प्रान्त के काशी-प्रयाग में लोग 'अच्छी शिकारें' मारकर 'लम्बी सलामें' करते हैं। अगर विहार में 'दही खट्टी' होती है तो मारवाड़ में 'बुख़ार चढ़ती' है, 'जनेऊ उतरती' है, और कानपुर के मैदान में 'बूँद गिरता' और 'रामायण पढ़ा जाता' है। विहार में 'हवा चलता है' तो झालरापाटन में 'नाक कटता' है और मुरादाबाद में 'गोलमाल मचती' है।"

अब यह प्रश्न पैदा होता है कि साहित्य के लिए किस प्रान्त और किस स्थान की बोली प्रमाणरूप समझनी चाहिए। प्रायः लोगों की राय है कि दिल्ली, मथुरा, आगरा की भूमि हिन्दी की जन्मभूमि है, वहीं का अनुकरण सबको करना चाहिए। लखनऊ प्रान्त की बोली भी टकसाली समझी

आती है। उर्दू के विषय में तो दिल्ली और लखनऊ में सदा नोक-झोंक रहा करती थी। चूँकि लिङ्ग के विषय में आगरा तथा लखनऊ की बोलियों में प्रायः अन्तर नहीं है, इसलिए कहा जा सकता है कि संयुक्तप्रान्त के अवधमण्डल तक लिङ्ग के विषय में विशेष गड़बड़ नहीं है। पूर्वी ज़िलों में बिहार के सम्पर्क के कारण आगरा और लखनऊ के प्रतिकूल लिङ्गों का व्यवहार होता है।

यह कठिनता होने पर भी साहित्यिक हिन्दी के लिङ्गों में विशेष अड़चन नहीं पड़ती। परन्तु यदि कोई छात्र इस विषय पर ध्यान ही न दे तो उसके लिए कोई उपाय नहीं है। सद्ग्रंथ पढ़ने से और अभ्यास से सब कार्य ठीक हो सकता है।

यह असम्भव है कि दोनों लिङ्गों के हज़ारों शब्दों की तालिका इस छोटी पुस्तक में दी जा सके। दिग्दर्शनार्थ कुछ शब्द दिये जाते हैं। संस्कृत और अरबी फ़ारसी के शब्दों के लिङ्ग हम पहले ही लिख चुके हैं।

जोड़ेवाले शब्द

(१) आकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के अन्त में 'आ' की जगह 'ई' कर देने से स्त्रीलिङ्ग हो जाता है—लड़का-लड़की, घोड़ा-घोड़ी आदि।

(२) कुछ अकारान्त पुँल्लिङ्ग शब्दों के अन्त में नी जोड़ने से—सिंह-सिंहनी, ऊँट-ऊँटनी आदि।

(३) व्यापार या पेशा करनेवालों के पुँल्लिङ्ग नामों के अन्तिम स्वर की जगह 'इन' जोड़ने से—लोहार-लोहारिन; जुलाहा-जुलाहिन; नाई-नाइन आदि।

(४) आस्पद, पदवी या उपनामसूचक पुँल्लिङ्ग शब्दों में 'आइन' जोड़ने से—ठाकुर-ठकुराइन; बाबू-बबुआइन; पाँड़े-पँड़ाइन आदि।

(५) सम्बन्ध, पेशा, जाति, उपनाम आदि सूचक पुँल्लिङ्ग शब्दों में 'आनी' जोड़ने से—देवर-देवरानी, मेहतर-मेहतरानी, खत्री-खत्रानी, चौधरी-चौधरानी आदि।

(६) कुछ पुँल्लिङ्ग शब्दों में 'इया' जोड़ने से—बूढ़ा-बुढ़िया, कुत्ता-कुतिया आदि।

(७) कुछ शब्दों के दोनों लिङ्गों में थोड़ी सी समता रहती है—राजा-रानी, ससुर-सास आदि।

(८) कई स्त्रीलिङ्ग शब्दों से पुँल्लिङ्ग रूप बनते हैं—भैंस-भैंसा, राँड़-रँडुआ, बहिन-बहनोई आदि।

(९) कुछ शब्दों में 'नर', 'मादा' शब्द जोड़कर लिङ्ग का अन्तर बताया जाता है—नर रीछ—मादा रीछ, नर भेड़िया—मादा भेड़िया आदि।

(१०) कुछ शब्द बिलकुल भिन्न होते हैं—पिता-माता; पुरुष-स्त्री; बैल-गाय आदि।

बिना जोड़ेवाले शब्द

पुँलिङ्ग

(१) आव, पा, पन, वट, हट, प्रत्ययों से बने भाववाचक शब्द—बनाव, बनाव, बुढ़ापा, बचपन, बनावट, खुजलाहट आदि।

(२) हिन्दी के आकारान्त शब्द—लोटा, सोना, तोता, पेड़ा आदि। परन्तु संस्कृत के आकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं, जैसे सत्ता, विद्या आदि।

(३) महीनों के नाम, दिनों के नाम, पहाड़ों के नाम, नव ग्रहों के नाम, अक्षरों के नाम (इ, ई, ऋ को छोड़कर), प्राय: वृक्षों के नाम (जामुन, नीम, खिरनी, खजूर आदि को छोड़कर)—जैसे चैत्र, वैशाख आदि; रविवार, सोमवार आदि; हिमालय, विन्ध्याचल आदि; सूर्य, चन्द्रमा आदि; अ, आ, क, ख आदि; आम, महुआ, बबूल, पीपल, बरगद आदि।

(४) शरीर के अंगों में मूड़, कान, गला, हृदय, रक्त, मांस, हाथ, अँगूठा, नख, पैर, घुटना, मुँह, पेट, होंठ, दाँत, चमड़ा, बाल, रोआँ आदि।

(५) भोजनों में भात, मालपुआ, हलुआ, लड्डू, अचार आदि।

(६) अनाजों में गेहूँ, चना, जौ, उड़द, बाजरा, कोदों, मटर, धान, चावल आदि।

(७) वस्त्रों में कुर्ता, अँगरखा, साफ़ा, दुपट्टा, कोट, पैजामा, मोज़ा, रूमाल, लहँगा आदि।

(८) बरतनों में लोटा, गिलास, घड़ा, डोल, तवा, चमचा, चिमटा, कटोरा, बहुगुना आदि।

(९) आभूषणों में कंठा, माला, हार, कंगन, कड़ा, झुमका, करनफूल आदि।

(१०) रत्नों में हीरा, मोती, मूँगा, पन्ना, नीलम, माणिक्य, पुखराज आदि।

(११) धातुओं में सोना, ताँबा, राँगा, लोहा, सीसा, काँसा, पारा, जस्ता आदि।

(१२) मकान के अंगों में दरवाज़ा, किवाड़, पत्थर, चूना, ताखा, झरोखा, कमरा, आँगन, बरोठा, चबूतरा, कोठा, ज़ीना आदि।

(१३) घर के सामान में मूसल, सूप, जाँता, चूल्हा, आदि।

(१४) औज़ारों में फावड़ा, हँसिया, सूजा, हल, फाल, खुरपा, गँड़ासा, छुरा आदि।

(१५) जल-संबंधी—नाला, कुआँ, तालाब, समुद्र, पानी, बादल, कुहरा आदि।

(१६) फुटकर शब्द—अनाज, ईंधन, कम्मल, काजल, खुर, गूदा, गोबर, घमंड, घूँघट, चक्कर, चन्दा, चोला, जमाव, जुआ, जोखिम, झगड़ा, झंझट, ढङ्ग, ढाँचा, तोड़, त्योहार, थूक,

दाम, दाँव, दिखाव, दौरा, धंधा, धब्बा, धुवाँ, नल, नाता, निपटारा, परदा, पसीना, बंगला, बरतन, बादल, बिल, बोझ, भरोसा, भाड़ा, मक्खन, मेला, मैदान, मैल, मोम, रंग, साथ, सामान।

स्त्रीलिंग

(१) आई, ई, स प्रत्ययों से बने भाववाचक शब्द—निठुराई, भलाई, मिठास आदि।

(२) प्रायः ईकारान्त शब्द—टोपी, रोटी, घाँटी, मिट्टी, शीशी आदि।

(३) नदियों के नाम, तिथियों के नाम, भाषाओं के नाम—गंगा, गोदावरी आदि; पड़वा, दुइज, तीज आदि; हिन्दी, मराठी, अँगरेज़ी आदि।

(४) शरीर के अङ्गों में आँख, छाती, पसली, हड्डी, कुहनी, हथेली, उँगली, खाल, गर्दन, जीभ, पीठ, कलाई आदि।

(५) भोजनों में रोटी, दाल, पकौड़ी, पूरी, तरकारी, जलेबी, खिचड़ी आदि।

(६) अनाजों में जुआर, मूँग, अरहर, मसूर आदि।

(७) वस्त्रों में धोती, क़मीज़, अचकन, टोपी, चादर, ओढ़नी, अँगिया आदि।

(८) बरतनों में कड़ाही, करछी, थाली, कटोरी, बटलोई, देग आदि।

(९) आभूषणों में हमेल, नथुनी, पायज़ेब, करधनी, अँगूठी, बाली, चूड़ी आदि ।

(१०) रत्नों में चुन्नी ।

(११) धातुओं में चाँदी, पीतल, गेरू, खड़िया, मिट्टी, टीन आदि ।

(१२) मकान के अंगों में छत, दीवार, नींव, ईंट, लकड़ी, दहलीज़, चौखट, कोठरी, घड़ौंची आदि ।

(१३) घर के सामान में मेज़, कुर्सी, दरी, अलमारी, खूँटी, चौकी आदि ।

(१४) औज़ारों में सुई, कटार, कुदाल, आलपीन, नहन्नी, छुरी, सलाई, कुंजी आदि ।

(१५) जल-सम्बन्धी—नदी, बावली, भाप, बर्फ़, ओस आदि ।

(१६) फुटकर शब्द—अनबन, आढ़त, आयु, ईख, उमंग, ओट, कोख, खपत, खोह, खाद, खटक, खान, गर्द, घात, घूँस, चोट, चमक, चाय, चाह, चोंच, चैन, छाप, छूट, जलन, जाँच, डींग, तरङ्ग, थाह, दौड़, दाब, धूम, धुन, धमक, प्यास, पकड़, पञ्चायत, पुकार, पोल, बाढ़, बैठक, बौछार, भीड़, भेंट, मांद, साध, सीख, हलचल ।

अशुद्धियों के नमूने

हमने एक परीक्षा की कापियाँ देखकर कुछ विशेष अशुद्धियाँ लिख ली थीं; उन्हें दिग्दर्शनार्थ आगे दिखाते हैं:—

दो प्रकार से लिखे जानेवाले शब्द

(१) शब्दों में स्वर और व्यञ्जन का प्रयोग

खावेगा, खायेगा, खायगा, खाएगा। संख्यायें, संख्याएँ। हुवा, हुआ। चाहिए, चाहिये। लिए, लिये। गई, गयी। गए, गये। माताओं, मातावों। जाओ, जाव, जावो। इनमें से कौन से शब्द शुद्ध हैं ?

यह विषय बड़ा विवादग्रस्त है; हर एक परिपाटी के पक्षपाती विद्वान् मौजूद हैं; इसलिए इसका निर्णय हम नहीं कर सकते। हम केवल यह बतला सकते हैं कि प्रायः कौन से रूप अधिक प्रचलित हैं।

(क) प्रायः 'व' नहीं पसन्द किया जाता, जावेगा, हुवा, मातावों, जावो, आदि का रिवाज दिनों दिन कम होता जाता है।

(ख) जहाँ एकवचन में 'य' होता है वहाँ बहुवचन में भी 'य' रखते हैं, परन्तु स्त्रीलिङ्ग में स्वर कर देते हैं; जैसे 'गया' से 'गये' परन्तु स्त्रीलिङ्ग में 'गई'। जहाँ एकवचन होता ही नहीं या एकवचन में 'य' से बच सकते हैं वहाँ स्वर लिखते हैं, जैसे 'लीजिए', 'चाहिए' (ब० व० चाहिएँ)।

(ग) एकवचन 'लिया' के बहुवचन में 'लिये' लिखते हैं, परन्तु अव्यय में 'लिए' लिखते हैं; जैसे "इसलिए मैंने सात आम लिये"।

(घ) आकारान्त शब्दों के बहुवचन में स्वर लिखते हैं; जैसे संख्याएँ, राजाओं।

(ङ) इकारान्त, ईकारान्त शब्दों के बहुवचन में 'य' लिखते हैं; जैसे ऋषियों, घोड़ियां।

(च) उकारान्त, ऊकारान्त शब्दों के बहुवचन में प्राय: स्वर लिखते हैं, जैसे भानुओं, भालुओं।

(छ) आकारान्त धातुओं के 'विधि' में स्वर लिखते हैं। जैसे लाओ, जाओ।

(ज) जायगा, जायेगा में से यथारुचि लिखते हैं।

(२) विभक्ति का चिह्न कहाँ लिखा जाये?

यह विषय भी विवादग्रस्त है। कोई लोग शब्द के साथ मिलाकर विभक्ति के चिह्न लिखते हैं, जैसे रामने, गोपालको, छुरीसे आदि; परन्तु प्राय: लोग उन्हें अलग लिखते हैं, जैसे राम ने, गोपाल को, छुरी से आदि। सर्वनामों में विभक्ति के चिह्न प्राय: शब्दों से मिलाकर ही लिखे जाते हैं; जैसे उसने, आपको आदि।

(३) अनुस्वार और चन्द्रविन्दु या अर्धचन्द्र

यह विषय विवादग्रस्त तो नहीं है, परन्तु कुछ तो प्रमाद के कारण और कुछ छापे की सुगमता के लिए, इसका ठीक प्रयोग प्राय: नहीं होता। नियम यह है कि यदि उच्चारण खींचकर हो अर्थात् उसमें अधिक समय लगे या अनुस्वार को ङ ञ ण न म के रूप में लिख सकें तब तो पूरा अनुस्वार

लिखना चाहिए; और यदि उसका उच्चारण हल्का होता हो तो उसे चन्द्रबिन्दु के रूप में लिखना चाहिए। लघु अक्षरों में अनुस्वार लगने से वे गुरु हो जाते हैं, परन्तु चन्द्रबिन्दु लगने से वे लघु ही बने रहते हैं। जैसे दांत और दाँत में पहला शब्द 'दान्त' भी लिखा जा सकता है और उसका उच्चारण 'शांत' या 'शान्त' की तरह होता है, दूसरे शब्द का उच्चारण 'पाँत' की तरह होता है। 'संखिया' शब्द में 'सं' अक्षर में दो मात्राएँ हैं, अर्थात् वह गुरु है, 'अँखिया' शब्द में 'अँ' अक्षर में एक ही मात्रा है, अर्थात् वह लघु है। "में, मैं, हैं, हों, करें, जावें", आदि को यथार्थ में "मेँ, मैँ, हैँ, होँ, करेँ, जावैँ" आदि लिखना चाहिए, परन्तु व्यवहार में इस नियम का पालन कुछ कठिन है।

—

अध्याय ४

वाक्यशुद्धि

१—वाक्य के आवश्यक अंग

शब्दों के उस समूह को जिससे कोई पूरा अर्थ निकले 'वाक्य' कहते हैं। पूरा अर्थ होने के लिए कोई नाम ऐसा होना चाहिए जिसके बारे में कोई बात कही जाय, और फिर वह बात होनी चाहिए जो उसके बारे में कही जाती है। इस प्रकार हर वाक्य में, चाहे वह कितना ही छोटा क्यों न हो, ये दोनों आवश्यक अङ्ग अवश्य होंगे। 'लड़का दौड़ा'—यह पूरा वाक्य है; इसमें 'लड़के' के बारे में 'दौड़ना' कहा गया है। व्याकरण में 'लड़का' उद्देश्य है, और 'दौड़ा' विधेय है। इसी प्रकार 'मोहन ने काटा'—में 'मोहन ने' उद्देश्य है और 'काटा' विधेय है, परन्तु इससे पूरा अर्थ नहीं निकलता। सुननेवाला तुरन्त पूछेगा कि 'मोहन ने क्या काटा ?' चूँकि 'काटना' सकर्मक क्रिया है, इसलिए वृक्ष, काठ, क़लम, हाथ आदि में से कोई शब्द 'कर्म' की भाँति जोड़ना पड़ेगा।

पूछनेवाला अभी बहुत से प्रश्न पूछ सकता है; जैसे 'कब काटा ?' 'कहाँ काटा ?' 'किस चीज़ से काटा ?' 'किसके

लिए काटा ?' 'कहाँ से काटा ?' 'कैसे काटा ?' आदि। जैसे जैसे इन प्रश्नों के उत्तर उस वाक्य में जोड़े जायेंगे वैसे वैसे वाक्य बड़ा होता जायगा। यदि इन सब प्रश्नों के उत्तर एक साथ जोड़ दिये जायें तो वाक्य का रूप इस प्रकार होगा:—

"मोहन ने किवाड़ों के लिए बाग़ में एक पेड़ दोपहर को कुल्हाड़ी से खटाखट जड़ से काटा।"

अब इस वाक्य में सम्बन्ध और सम्बोधन को छोड़कर शेष सभी कारकों का प्रयोग हो गया। मोहन ने—कर्त्ता; पेड़—कर्म; कुल्हाड़ी से—करण; किवाड़ों के लिए—सम्प्रदान; जड़ से—अपादान; दोपहर को और बाग़ में—अधिकरण। 'खटाखट' शब्द क्रियाविशेषण है। 'मोहन ने' उद्देश्य है; शेष सब विधेय हैं।

अब यदि तुम चाहो तो सम्बोधन जोड़ सकते हो और प्राय: हर कारक के साथ या तो एक या कई विशेषण जोड़ सकते हो या समानाधिकरण शब्द, या सम्बन्धकारक का कोई शब्द, जोड़ सकते हो। उस दशा में वाक्य और भी बड़ा हो जायगा। तब इस प्रकार का रूप होगा:—

"हे भाई, गोपाल बढ़ई के पुत्र मोहन ने ज़मींदार के कमरे के बड़े किवाड़ों के लिए नदी के समीपवाले बाग़ में एक पुराना मोटा शीशम का पेड सोमवार को दोपहर को इस्पात की तेज़

कुल्हाड़ी से खटाखट बिलकुल जड़ से काटा।" इसमें 'गोपाल बढ़ई के पुत्र मोहन ने' उद्देश्य है, और शेष सब विधेय हैं।

यद्यपि वाक्य बड़ा हो गया, तथापि अभी तक वह 'साधारण' या 'असंयुक्त' या 'अमिश्रित' या 'असंकीर्ण' वाक्य है, अर्थात् उसमें एक ही क्रिया का प्रयोग अभी तक हुआ है। यदि तुम उसे संकीर्ण (मिश्रित) बनाना चाहो तो अनेक प्रकार से बना सकते हो, अर्थात् या तो दो प्रधान क्रियाएँ लाकर वाक्य को 'अनाश्रय संकीर्ण' बना सकते हो, या किसी संज्ञा, या विशेषण या क्रियाविशेषण का भाव एक वाक्य-द्वारा प्रकट करके 'साश्रय संकीर्ण' बना सकते हो। हम केवल एक रीति से इसका उदाहरण देते हैं:—

'गोपाल बढ़ई के पुत्र मोहन ने, जो अभी बम्बई से नौकरी छोड़कर आया है, ज़मींदार के कमरे के उन किवाड़ों के लिए जो आठ फ़ीट ऊँचे होंगे, नदी के समीपवाले बाग़ में एक पुराना मोटा शीशम का पेड़, सोमवार की दोपहर को जब कि लूह के कारण अग्नि सी बरसती थी, उसी तेज़ कुल्हाड़ी से जिससे उसने सैकड़ों पेड़ काटे थे, खटाखट जड़ से इस तरह काट डाला कि पेड़ का कोई भी चिह्न वहाँ नहीं दिखाई देता।"

अब वाक्य बहुत बड़ा और भद्दा हो गया। पढ़नेवाला इस वाक्य के अन्त तक पहुँचते पहुँचते उकता जाता है और वाक्य

के पूर्व भाग की बातें भूल जा सकता है; कम से कम सब बातें स्मरण रखने के लिए उसे विशेष ध्यान देना पड़ता है। रचना में यह दुर्गुण है। तथापि व्याकरण के हिसाब से यदि चाहो तो इसे अभी बहुत बढ़ा सकते हो।

तुमने व्याकरण में पढ़ा होगा और ऊपर के उदाहरणों में भी देखा होगा कि उद्देश्य और विधेय का 'विस्तार' किस प्रकार होता है। उद्देश्य में कर्त्ताकारक रहता है, और विधेय में कर्म, पूरक और क्रिया, ये तीन अङ्ग होते हैं। कर्त्ता, कर्म और पूरक का विस्तार (१) विशेषणों के द्वारा, (२) सम्बन्धकारक के द्वारा, और (३) समानाधिकरण शब्द के द्वारा होता है; तथा क्रिया का विस्तार (१) क्रियाविशेषण के द्वारा, (२) करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण कारकों के द्वारा, और (३) पूर्वकालिक क्रिया के द्वारा होता है। हर दशा में जिन शब्दों का लगाव जिन अन्य शब्दों के साथ होता है वे उन्हीं के निकट रक्खे जाते हैं। इन सब बातों का विस्तृत वर्णन व्याकरण में है अतः हम यहाँ इन पर अधिक विचार नहीं करते।

अब प्रश्न पैदा होता है कि वाक्य के मुख्य अङ्गों, अर्थात् कर्त्ता, कर्म, क्रिया, पूरक को तथा इन सबके विस्तारों को किस क्रम से रखना चाहिए। इसके लिए अग्रलिखित नियम ध्यानपूर्वक पढ़ो।

से नहीं टपकता, किन्तु छत से टपकता है। "कल रात को चोर आये थे" साधारण अर्थ है, परन्तु "चोर कल रात को आये थे" सूचित करता है कि परसों नहीं, दिन को नहीं, किन्तु कल रात को। इसी प्रकार 'घर में आठ आदमी बैठे हैं" में 'आठ आदमी' पर ज़ोर है, परन्तु "आठ आदमी घर में बैठे हैं" में 'घर' पर ज़ोर है।

(५) सम्बन्धकारक अपने सम्बन्धी से पहले आता है, जैसे राम का पुत्र, सीता की पुस्तकें, आदि, परन्तु अवधारण के लिए पीछे लाया जा सकता है; जैसे "यह लड़का किसका है ?" "दूध गाय ही का अच्छा होता है।"

(६) करणकारक अर्थ के गौरव के अनुसार कर्म से पूर्व या परे आता है, जैसे "उसने कुल्हाड़ी से वृक्ष काटा" में 'वृक्ष' पर ज़ोर है, परन्तु "उसने वृक्ष कुल्हाड़ी से काटा" में 'कुल्हाड़ी' पर ज़ोर है।

(७) सम्बोधन तथा विस्मयादि-बोधक अव्ययों का प्रयोग प्रायः वाक्य के प्रारम्भ ही में होता है।

(८) समुच्चयबोधक अव्यय जिन दो शब्दों, शब्दसमूहों, वाक्यांशों या वाक्यों को मिलाते हैं उनके बीच में रहते हैं।

(९) क्रियाविशेषण प्रायः क्रिया से मिला हुआ उससे पहले आता है।

(१०) विशेषण अपने विशेष्य से पहले और पीछे दोनों प्रकार से आता है। परन्तु प्रश्नसूचक विशेषण पहले ही आता है।

(११) पूर्वकालिक क्रिया सदा प्रधान क्रिया से पहले आती है।

ऊपर लिखे हुए नियमों के भरोसे ही रहने से वाक्य-रचना का काम नहीं चल सकता। दो बातों पर दृष्टि रखना अत्यन्त आवश्यक है। एक तो यह कि किसी शब्द के भाव पर विशेष गौरव या अवधारण देने के लिए उसका स्थान प्रायः बदल जाता है; इसके अनेक उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं। दूसरी बात यह है कि जब एक ही वाक्य में कई कारकों का प्रयोग होता हो या कई प्रकार के अव्ययों, विशेषणों, आदि का प्रयोग होता हो तब उन्हें इस प्रकार रखना चाहिए कि प्रत्येक का सम्बन्ध जिस शब्द से या शब्द-समूह से इष्ट हो, उसी के साथ स्पष्ट प्रकट हो, ऐसा न हो कि जिस शब्द से इष्ट नहीं, उससे सम्बन्ध प्रतीत होने लगे। जैसे "उसने छत पर घास काटते हुए एक चिड़िया देखी"—यदि वक्ता का भाव यह है कि चिड़िया छत पर थी, और वह स्वयम् (कहीं) घास काट रहा था, तो वाक्य अशुद्ध है। इसी प्रकार "मैं तुम्हारे सामने उस कुत्ते के भौंकने का हाल कहता हूँ,"—इस वाक्य का क्या अर्थ है ? "मैं तुम्हारे सामने हाल कहता हूँ" यह भाव है या "तुम्हारे सामने कुत्ता भौंका" यह भाव है ? "तुम्हारे लिए इस बड़ी सभा में झूठ बोलना अच्छा नहीं है।" इसके दो अर्थ हो सकते हैं—(१) यदि तुम झूठ बोलो तो अच्छा नहीं है; (२) तुम्हारे हित के लिए यदि अन्य

कोई झूठ बोले तो अच्छा नहीं। स्पष्ट भाव समझ में नहीं आता।

३—वाक्य के भेद

वाक्यों के मोटे मोटे प्रायः चार भेद हो सकते हैं—

(१) वर्णनात्मक, (२) आज्ञात्मक, (३) संकेतात्मक, (४) सन्देहात्मक।

(१) वर्णनात्मक—जिसमें कोई वर्णन पाया जाय, जैसे मैं आता हूँ, वह लिखेगा, जल नहीं मिला।

(२) आज्ञात्मक—जिसमें कोई आज्ञा, प्रार्थना, आदि पाई जावे; जैसे तुम यहाँ से जाओ, आप चले आइए, तू मत लिख, वह सोये, हम न जायं।

(३) संकेतात्मक—जिसमें कोई शर्त पाई जाय, जैसे वह गाड़ी पाता तो चला जाता; मोहन आयेगा तो भर्ती हो जायगा, तुम कहो तो यह काम न करूँ।

(४) सन्देहात्मक—जिसमें सन्देह पाया जाय, जैसे वह शायद आता हो, रेल छुट न जाय।

फिर हर एक के दो दो भेद हो सकते हैं—(१) विधिसूचक, जिसमें विधान पाया जाय, और (२) निषेधसूचक जिसमें अभाव पाया जाय, ऊपर के मोटे चारों भेदों में दोनों प्रकार के उदाहरण दिये हैं।

इस प्रकार आठ भेद हो गये। इनमें से वर्णनात्मक और संकेतात्मक वाक्य प्रश्न रूप से भी आ सकते हैं—जैसे

क्या मैं गाता हूँ ? क्या जल नहीं मिला ? किसके लिए रुपया जोड़ते हो ? क्या मोहन आयेगा तो भर्ती हो जायेगा ? वह गाड़ी पाता तो क्या चला न जाता ? विस्मयादिसूचक वाक्यों को वर्णनात्मक के अन्तर्गत, और इच्छासूचक वाक्यों को आज्ञात्मक के अन्तर्गत मान सकते हैं।

यह सम्भव है कि किसी एक ही भाव को भिन्न भिन्न प्रकार के वाक्यों-द्वारा प्रकट किया जाय। जैसे—

(१) विद्या से नम्रता आती है (वर्णनात्मक विधिसूचक);

(२) यह बात नहीं कि विद्या से नम्रता न आती हो (वर्णनात्मक निषेधसूचक);

(३) क्या विद्या से नम्रता नहीं आती ? (वर्णनात्मक प्रश्न);

(४) नम्रता के लिए विद्या पढ़ो (आज्ञात्मक विधिसूचक);

(५) विद्या पढ़ो और नम्रता लो (आज्ञात्मक, विधिसूचक);

(६) न विद्या पढ़ो न नम्रता लो (आज्ञात्मक निषेधसूचक);

(७) यदि विद्या पढ़ोगे तो नम्रता आयेगी (संकेतात्मक, विधिसूचक);

(८) यदि विद्या न पढ़ोगे तो नम्रता न आयेगी (संकेतात्मक निषेधसूचक);

(९) यदि विद्या पढ़ोगे तो क्या नम्रता न आयेगी ? (संकेतात्मक निषेधसूचक प्रश्न);

(१०) यदि विद्या न पढ़ोगे तो क्या नम्रता आयेगी ? (संकेतात्मक निषेधसूचक प्रश्न);

(११) कदाचित् विद्या पढ़ने से उसमें नम्रता आ जाय (सन्देहात्मक विधिसूचक);

(१२) शायद विद्या न पढ़ने से उसमें नम्रता न आई हो (सन्देहात्मक निषेधसूचक);

(१३) आहा ! विद्या से कितनी नम्रता आ गई है !

(१४) ईश्वर करे विद्या सीखने से उसमें नम्रता आ जाय;

(१५) नम्रता के लिए तुम्हें विद्या सीखनी चाहिए।

अभ्यास

निम्नलिखित भावों को जितने प्रकार के वाक्यों-द्वारा प्रकट कर सकते हो करो—

(१) व्यायाम करने से शरीर नीरोग रहता है।

(२) दुर्व्यसन दुःखदायी होता है।

(३) ईश्वर सब संसार का स्वामी है।

(४) धन के विना कोई काम नहीं होता।

(५) सफ़ाई सब सुख की खान है।

४—संकुचित तथा विस्तृत रूपों से भाव-प्रकाशन

पहले देखा जा चुका है कि एक ही भाव किन भिन्न भिन्न प्रकार के वाक्यों-द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। यहाँ हम यह दिखलाने की चेष्टा करते हैं कि एक ही बात को एक शब्द,

शब्दसमूह, वाक्यांश या वाक्य के द्वारा किस प्रकार प्रकट कर सकते हैं।

(क) (१) एक **विद्वान्** सज्जन ने व्याख्यान दिया (विशेषण शब्द);

(२) विद्या से परिपूर्ण एक सज्जन ने व्याख्यान दिया (विशेषणसूचक शब्दसमूह);

(३) एक ऐसे सज्जन ने व्याख्यान दिया जो विद्वान् था या विद्या से परिपूर्ण था (विशेषणसूचक वाक्यांश);

(४) एक सज्जन ने व्याख्यान दिया। वह विद्वान् था, या विद्या से परिपूर्ण था (विशेषणसूचक वाक्य)।

(ख) (१) इस कविता में एक विशेषता है। यह एक बालिका की लिखी हुई है। वह बालिका अभी १२ वर्ष की है।

(२) इस कविता में यह विशेषता है कि यह एक बालिका की लिखी हुई है जो अभी १२ वर्ष की है।

(३) १२ वर्ष की एक बालिका के द्वारा लिखा जाना इस कविता की विशेषता है।

(४) द्वादशवर्षीय-बालिका-प्रणीतत्व इस कविता की विशेषता है।

जो काम छोटे छोटे वाक्य अलग अलग रहकर करते हैं वही काम पूर्वकालिक क्रियाओं के द्वारा, संज्ञा वाक्यों, विशेषण वाक्यों, क्रियाविशेषण वाक्यों के द्वारा, या संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण के द्वारा, या समानाधिकरण शब्दों के द्वारा हो सकता है, तथा संयोजक और विभाजक अव्ययों के द्वारा

वाक्यांश मिलाने से हो सकता है। इस प्रकार छोटे-छोटे वाक्यों का भाव साधारण या मिश्रित वाक्य के द्वारा प्रकट किया जा सकता है। कुछ उदाहरण दिये जाते हैं:—

(१) मैंने भोजन किया। मैं समय पर स्कूल पहुँच गया।—मैं भोजन करके समय पर स्कूल पहुँच गया (पूर्व-कालिक क्रिया)।

(२) उसने मुझसे बार बार प्रश्न किये। मेरा निवास-स्थान जानने की उसे इच्छा थी। वह मेरे वहाँ जाने का कारण भी जानना चाहता था—उसने मुझसे बार बार पूछा कि तुम कहाँ रहते हो और क्यों आये हो (संज्ञावाक्य)—उसने मेरे निवासस्थान और आगमन-कारण के विषय में प्रश्न किये (संज्ञा)।

(३) वेदव्यासजी की बनाई एक पुस्तक है। उसका नाम महाभारत है। उसमें अनेक आख्यान लिखे हुए हैं। इन आख्यानों के पढ़ने में मन बहुत लगता है:—वेदव्यासजी की बनाई एक पुस्तक में जिसका नाम महाभारत है अनेक आख्यान लिखे हुए हैं जिनके पढ़ने में मन बहुत लगता है (विशेषण वाक्य)—वेदव्यास-प्रणीत महाभारत पुस्तक में अनेक रोचक आख्यान लिखे हुए हैं (विशेषण शब्द)।

(४) रात्रि का घोर अन्धकार था। मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। उस समय एक पथिक ने मेरे द्वार पर पुकारा—

जब रात्रि को घोर अन्धकार था और मूसलाधार वृष्टि हो रही थी, एक पथिक ने मेरे द्वार पर पुकारा (क्रियाविशेषण वाक्य)—रात्रि के घोर अन्धकार तथा मूसलाधार वृष्टि में एक पथिक ने मेरे द्वार पर पुकारा (अधिकरणकारक)।

(५) हरिश्चन्द्र अयोध्या के राजा थे। वे रामचन्द्रजी के पूर्वपुरुष थे। उनके पास ऋद्धियों सिद्धियों का भण्डार भरा था। उन पर विश्वामित्रजी का कोप हुआ। विश्वामित्रजी मुनि थे। इस कोप के कारण हरिश्चन्द्र को बड़ा दुःख उठाना पड़ा, परन्तु उन्होंने अपना सत्यव्रत नहीं छोड़ा—रामचन्द्रजी के पूर्वपुरुष, सर्वऋद्धिसिद्धिसम्पन्न; अयोध्या के राजा हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र मुनि के कोप से बड़ा दुःख उठाकर भी अपना सत्यव्रत नहीं छोड़ा (समानाधिकरण शब्द)।

(६) राम का यहाँ आना अच्छा है। श्याम का यहाँ आना अच्छा है। राम और श्याम से तुमको सुख मिलेगा। राम और श्याम मिठाई बहुत खाते हैं। राम और श्याम की मिठाई का खाना तुमको दुःख पहुँचा सकता है।—राम और श्याम का यहाँ आना अच्छा है क्योंकि इनसे तुमको सुख मिलेगा, परन्तु इनकी बहुत मिठाई खाने की आदत तुमको दुःख पहुँचा सकती है (सर्वनाम तथा समुच्चयसूचक अव्यय)।

अब एक प्रश्न उपस्थित होता है। संकुचित रूप से लिखना

अच्छा होता है या विस्तृत रूप से लिखना। हम कह सकते हैं कि 'अर्थगौरव' बहुत अच्छी चीज़ है; किसी भाव को कम से कम जितने शब्दों के द्वारा सम्भव हो प्रकट करना चाहिए; व्यर्थ का शब्दाडम्बर अच्छा नहीं होता; तथापि ऐसे अवसर आ जाते हैं जहाँ विस्तार ही से शोभा होती है। अवधारण के लिए, किसी बात पर पाठकों का ध्यान विशेष रूप से दिलाने के लिए, भाषा में लालित्य लाने के लिए, विस्तृत रूप का प्रयोग होता है; यहाँ तक कि कई कई शब्द बार बार लाये जाते हैं; सर्वनामों तक का प्रयोग बन्द कर दिया जाता है। उदाहरणों में यह बात देखो:—

(क) राम ही थे जिन्होंने पितृप्रेम का आदर्श दिखा दिया। राम ही थे जिन्होंने भ्रातृ-प्रेम की मर्यादा बाँध दी। राम ही थे जिन्होंने अभिषेक के समय प्रसन्नता तथा वनवास के समय ग्लानि नहीं प्रकट की। राम ही थे जिन्होंने रावण-समान पराक्रमी शत्रु का संहार किया। राम ही थे जिन्होंने मर्य्यादापुरुषोत्तम नाम सार्थक किया।

(ख) प्रातःकाल हुआ। चिड़ियाँ चहचहाने लगीं। बैलों को प्रोत्साहित करने के लिए कृषकों का शब्द सुनाई देने लगा। शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन के झोंके आने लगे।

अभ्यास

(१) अग्रलिखित वाक्यों को एक एक मिश्रित वाक्य में प्रकट करो:—

(क) हम लोग गुरुजी के भक्त हैं। गुरुजी हम लोगों से श्रेष्ठ हैं। गुरुजी बड़े विद्वान् हैं।

(ख) राजा दशरथ अयोध्या में रहते थे। वह बड़े प्रतापी थे। उनके तीन प्रधान स्त्रियाँ थीं। उनके चार पुत्र थे। पुत्रों में सब से बड़े राम थे।

(ग) श्यामू का घोड़ा लाल है। वह घोड़ा कल खो गया था। जब घोड़ा खो गया था तब आँधी चलती थी। उस घोड़े ने घुड़दौड़ में कई बाज़ियाँ जीतीं। वह घोड़ा आज मिल गया।

(२) बिना अर्थ में बाधा पहुँचाये इन वाक्यों को छोटा करो:—

(क) जो बालक बुद्धिमान् होते हैं और जिनके हृदय में शील होता है वे कभी ऐसा काम नहीं करते जो निन्दा के योग्य हो।

(ख) कल एक आदमी आया था जो बहुत ऊँचा था, जिसकी आँखें फूटी हुई थीं, और जो पैरों से चलने में असमर्थ था।

(ग) पंडितजी ने कल मुझसे पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है, तुम किस वंश के हो, और कहाँ रहते हो।

(३) कोष्ठकों के भीतरवाले शब्दों के भाव संज्ञावाक्य, विशेषणवाक्य, क्रियाविशेषणवाक्य के द्वारा प्रकट करो:—

(क) (तेल में पकी हुई) पूड़ी किसी किसी को गर्मी करती है।

(ख) (स्कूल से मेरे घर की दूरी) पूछकर क्या करोगे ?

(ग) (वृष्टि में) बिना छतरी लिये घर से बाहर नहीं जाना चाहिए।

५—वाच्य-परिवर्तन

"मैं पत्र लिखता हूँ"—इस वाक्य की क्रिया 'लिखना' है जिसका यथार्थ कर्त्ता 'मैं' कर्त्ताकारक में आया है। इसी वाक्य को यदि इस प्रकार कहें "मुझसे पत्र लिखा जाता है" तो यथार्थ कर्त्ता करणकारक में (मुझसे) हो जाता है, और यथार्थ कर्म 'पत्र' कर्त्ताकारक में प्रकट होता है। भाव दोनों वाक्यों का प्रायः एक ही है।

इसी प्रकार "देवदत्त नहीं सोता है" और "देवदत्त से नहीं सोया जाता है", इनमें देवदत्त कर्त्ता है जो प्रथम वाक्य में कर्त्ताकारक, तथा द्वितीय वाक्य में करणकारक में आया है। इस उदाहरण में कर्म नहीं है, इसलिए दूसरे वाक्य में कोई शब्द कर्त्ताकारक में नहीं रक्खा जा सकता। स्मरण रखना चाहिए 'कर्त्ता' और 'कर्त्ताकारक या कर्तृकारक' एक ही चीज़ नहीं हैं, और 'कर्म' तथा 'कर्मकारक' एक ही चीज़ नहीं हैं।

"मैं पत्र लिखता हूँ" कर्तृवाच्य है, 'मुझसे पत्र लिखा जाता है' कर्मवाच्य है। "देवदत्त नहीं सोता है" कर्तृवाच्य है, "देवदत्त से नहीं सोया जाता है" भाववाच्य है।

पीछे का विवरण देखकर तुम 'कर्तृवाच्य' आदि शब्दों की परिभाषा बना सकते हो। (१) यदि क्रिया का असली कर्त्ता कर्त्ताकारक में हो तो उस क्रिया को **कर्तृवाच्य** क्रिया कहते हैं। (२) यदि सकर्मक क्रिया का असली कर्त्ता करणकारक में हो और उसका कर्म कर्त्ताकारक में हो तो उस क्रिया को **कर्मवाच्य** क्रिया कहते हैं। (३) यदि अकर्मक क्रिया का असली कर्त्ता करणकारक में हो तो क्रिया को **भाववाच्य** क्रिया कहते हैं। **वाच्य** से यह प्रकट होता है कि किसी क्रिया का असली कर्त्ता किस कारक में रक्खा गया है—कर्त्ताकारक में या करणकारक में।

द्विकर्मक क्रिया का कर्मवाच्य रूप बनाने में प्रधान कर्म को कर्त्ताकारक के रूप में प्रकट करते हैं और गौण कर्म का रूप नहीं बदलते। जैसे "गुरु ने शिष्य को विद्या पढ़ाई" कर्तृवाच्य है; "गुरु से शिष्य को विद्या पढ़ाई गई" कर्मवाच्य है। "गुरु से शिष्य विद्या पढ़ाया गया" बहुत भद्दा रूप है।

कर्तृवाच्य क्रिया को कर्मवाच्य या भाववाच्य क्रिया में बदलना, तथा कर्मवाच्य या भाववाच्य क्रिया को कर्तृवाच्य क्रिया में बदलना **वाच्यपरिवर्तन** कहलाता है।

कर्मवाच्य रूप बनाने के लिए मुख्य क्रिया के सामान्य भूतकाल के रूप में 'जाना' क्रिया का इष्ट रूप जोड़ देना चाहिए; यह रूप लिङ्ग और वचन में कर्त्ताकारक के अनुकूल होता है। जैसे 'खाना' क्रिया से—भात खाया जाता है; मेवे खाये जाते

हैं; रोटी खाई जाती है; जलेबियाँ खाई जाती हैं; दाल खाई जायेगी; पेड़े खाये जायेंगे; अमरूद खाया जाता था; चने खाये जाते होंगे आदि।

भाववाच्य रूप बनाने का भी यही नियम है, परन्तु उसकी क्रिया सदा पुँल्लिङ्ग एकवचन ही रहती है; जैसे मुझसे नहीं दौड़ा जाता है; तुमसे नहीं सोया जायगा; उससे नहीं जागा गया आदि।

नोट—मुख्य क्रिया 'जाना' का रूप वाच्यपरिवर्तन में 'जाया' होता है, जैसे मुझसे नहीं जाया जाता।

ऊपर हमने कहा है कि कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य का अर्थ प्रायः समान होता है; बिलकुल समान नहीं होता। प्रायः जब कर्म की प्रधानता दिखानी होती है तब कर्मवाच्य का प्रयोग किया जाता है। भाववाच्य क्रिया का प्रयोग प्रायः 'नहीं' आदि निषेधात्मक शब्दों के साथ होता है; तब शक्ति के अभाव की सूचना मिलती है। उदाहरण—प्र० मोहन क्या कर रहे हैं? उ० मोहन पत्र लिख रहे हैं। यहाँ मोहन की प्रधानता इष्ट है, इसलिए कर्तृवाच्य का प्रयोग हुआ है। प्र० पत्र की बाबत क्या कहते हो? उ० पत्र लिखा जा रहा है। यहाँ कर्म 'पत्र' की प्रधानता है, इसलिए कर्मवाच्य का प्रयोग हुआ है। प्र० तुम सोते क्यों नहीं? उ० मुझसे नहीं सोया जाता। निषेधात्मक वाक्य का भाव है कि मुझे नींद नहीं आती अथवा मुझमें सोने की शक्ति नहीं है, अथवा सोने

में मेरी रुचि नहीं। प्रश्नात्मक वाक्यों में भी भाववाच्य का प्रयोग होता है; जैसे प्र० तुम सोते क्यों नहीं? उ० मुझसे सोया जाता है? (अर्थात् नहीं सोया जाता)।

नोट—निषेधात्मक वाक्यों के अन्त में है या हैं प्रायः नहीं लगाते।

कुछ क्रियाओं का रूप तो कर्मवाच्य का नहीं होता, परन्तु अर्थ होता है; जैसे दूध बिकता है (बेचा जाता है); घर पुतता है (पोता जाता है); सड़क नपती है (नापी जाती है) आदि। ऐसे वाक्यों के वाच्यपरिवर्त्तन में यथार्थ कर्त्ता को कर्त्ताकारक में रखना पड़ेगा; जैसे अहीर दूध बेचता है; नौकर घर पोतता है; मज़दूर सड़क नापता है; आदि। स्मरण रखना चाहिए कि "दूध बिकता है" और "दूध बेचा जाता है" का भाव एक नहीं है।

नोट—सभी क्रियाओं का वाच्यपरिवर्त्तन अच्छा नहीं होता।

अभ्यास

निम्नलिखित वाक्यों का वाच्यपरिवर्त्तन करो:—

(१) पुस्तकें विद्या फैलाती हैं। (२) उसने एक नया आविष्कार किया। (३) उत्तम विचार पुस्तकों में लिखे जाते हैं। (४) पक्षी दस मील उड़ा। (५) आप पत्र कब लिखेंगे?

(६) क्या तुम उस समय सोते थे ? (७) मुझे जाने की आज्ञा दीजिए। (८) मैंने उसको पाँच पुस्तकें इनाम में दीं। (९) वह बकरियों को जंगल में हाँक देगा। (१०) मैं तुमको एक सेर दूध पिला दूँगा। (११) रानी ने नौकरानी से भिक्षुक को भीख दिलाई ('नौकरानी' शब्द के साथ 'द्वारा' शब्द का प्रयोग करो)। (१२) यह पत्र लिख के मैं यहाँ से उठूँगा। (१३) वह तीन घण्टे तक बैठा रहा। (१४) उसने पत्र पढ़ लिया होगा। (१५) उसे बैठा रहने दो। (१६) (तुलसी) आह ग़रीब की हरि से सही न जाय। (१७) पज़ावे में ईंटें पकाई जाती हैं। (१८) यदि तुमसे इतना काम नहीं किया जा सकता तो मुझसे तुम्हारा वेतन भी नहीं बढ़ाया जा सकता। (१९) उनके द्वारा पद ग्रहण किये जाते ही उनकी निन्दा की जाने लगी। (२०) धन्य है ! यह खेल तो बड़े बड़े पहलवानों से भी नहीं दिखाया जा सकेगा।

६—सरल और व्यस्त वर्णन

किसी वक्ता के शब्दों को विना किसी परिवर्त्तन के जैसे के तैसे रहने देना 'सरल वर्णन' है; और उन्हें आवश्यक परिवर्तन करके अपनी बोली में प्रकट करना 'व्यस्त वर्णन' है। अँगरेज़ी ढङ्ग के अनुकरण के सरल वर्णन के आदि और अन्त में दोहरे उलटे कामा ("   ") लगाते हैं; और व्यस्त वर्णन के पहले 'कि' अव्यय जोड़ देते हैं।

सरल वर्णन—देवदत्त ने कहा "मैं पत्र लिखूँगा"।

व्यस्त वर्णन—देवदत्त ने कहा कि मैं पत्र लिखूँगा।

अँगरेज़ी व्याकरण के कारण यदि हिन्दी-रचना में छात्र लोग गड़बड़ न डालते होते तो हमें इस विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता ही न होती। सच पूछिए तो हिन्दी में व्यस्त वर्णन होता ही नहीं; परन्तु अँगरेज़ी पढ़नेवाले छात्र हिन्दी में भी अँगरेज़ी व्याकरण के नियम ठूँसने लगते हैं तब अर्थ का अनर्थ हो जाता है। ऊपर का उदाहरण यदि अँगरेज़ी नियम के अनुसार व्यस्त वर्णन में लिखा जाय तो यह रूप होगा "देवदत्त ने कहा कि वह पत्र लिखेगा"। सो मेरी समझ में तो यह ठीक नहीं; क्योंकि अँगरेज़ी में तो सर्वनाम 'वह' का अर्थ 'देवदत्त' समझा जायगा; परन्तु हिन्दी में यह आवश्यक नहीं है। हाँ, हिन्दी में यदि व्यस्त वर्णन करना ही हो तो संज्ञावाक्य "मैं पत्र लिखूँगा" को संज्ञावाक्य न रखकर इस प्रकार का कोई रूप कर देना चाहिए जैसे "देवदत्त ने पत्र लिखने की प्रतिज्ञा की"। रह गई उलटे कामा लगाने की बात, सो उसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। एक उदाहरण और दिया जाता है।

(१) मारीच से बातें करते करते क्रोध के आवेश में रावण चिल्ला उठा, "यदि तुम मेरा कहना नहीं मानोगे और राम को छलने का यत्न नहीं करोगे तो मैं तुमको और उसको मार डालूँगा"। यह सरल वर्णन है।

(२) इसी को हिन्दी-नियम के अनुसार व्यस्त वर्णन में रक्खो—मारीच से...चिल्ला उठा कि यदि तुम मेरा कहना ···मार डालूँगा।

(३) इसी को अँगरेज़ी नियम के अनुसार व्यस्त वर्णन में करो तो यह रूप होगा—मारीच से···चिल्ला उठा कि यदि वह उसका कहना नहीं मानेगा और राम को छलने का यत्न नहीं करेगा तो वह उसको और उसको मार डालेगा। इसमें 'वह', 'उसको' आदि शब्द कितनी अस्पष्टता पैदा करते हैं!

७—कर्त्ताकारक के चिह्न 'ने' का प्रयोग

यह विषय न तो विवादग्रस्त है और न कठिन है; परन्तु इसमें इतनी अधिक अशुद्धियाँ होती हैं कि परीक्षक लोगों का जी ऊब जाता है। इसी लिए हम इस विषय को कुछ विस्तार से लिखने की चेष्टा करते हैं।

(क)

इन दशाओं में 'ने' का प्रयोग नहीं होता:—

(१) अकर्मक क्रियाओं के साथ;

(२) कर्मवाच्य और भाववाच्य क्रियाओं के साथ;

(३) वर्त्तमानकाल, भविष्यत्काल; विधि, सम्भावना, के साथ;

(४) अपूर्णभूत, और हेतुहेतुमद्भूत के साथ।

(५) जब प्रधान क्रियाओं के साथ अकर्मक क्रियाएँ सकना, चुकना, जाना, पड़ना, उठना, बैठना, रहना, लगना, पाना (आज्ञासूचक) लगाकर संयुक्त क्रियाएँ बनाई जाती हैं; जैसे मैं वह पुस्तक पढ़ सका, या पढ़ चुका, या पढ़ गया; वह सच्ची बात कह उठा, या कह बैठा, या कहता रहा, या कह पड़ा, या कहने लगा, या कहने पाया।

(६) सकर्मक, भूलना, लाना, बोलना के साथ। समझना, खेलना, बकना, जनना के साथ चिह्न 'ने' कोई लोग लगाते हैं कोई नहीं लगाते।

नोट—जब प्रधान क्रियाओं के साथ सकर्मक क्रियाएँ डालना, लेना, देना, करना, चाहना, पाना (शक्तिसूचक) लगाकर संयुक्त क्रियाएँ बनाई जाती हैं तब नियमानुसार 'ने' का प्रयोग होता है [आगे (ख) में नियम देखो]; जैसे उसने पत्र लिख दिया; मैंने रोटी खा ली; आपने काम कर दिया; मैंने बोलना चाहा; उसने ठीक बात न कह पाई, आदि।

(ख)

कर्त्ताकारक का चिह्न 'ने' अकेली या संयुक्त क्रियाओं की परवर्ती सकर्मक क्रियाओं के सामान्य, आसन्न, पूर्ण, और संदिग्धभूत के कर्तृवाच्य प्रयोग में आता है।

इतने छोटे नियम का याद रखना कठिन नहीं; फिर भी सुभीते के लिए इसी विषय पर हम एक दोहा बनाये देते हैं—

आ० सा० पू० सं० भूत में, क्रिया सकर्मक माहिं।
कर्तृवाच्य में केवल, 'ने' हो अन्यत नाहिं॥

[दोहे के आ० सा० पू० सं० भूत का अर्थ है आसन्न, सामान्य, पूर्ण, संदिग्धभूत।]

नोट—वाक्य में पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग होने से लोग प्रायः 'ने' का प्रयोग अशुद्ध करते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि 'ने' का प्रयोग वाक्य की समापिका क्रिया अर्थात् मुख्य क्रिया के हिसाब से होता है, पूर्वकालिक क्रिया के हिसाब से नहीं। जैसे "मैंने भोजन करके स्कूल गया" अशुद्ध है; "देवदत्त खूब सोकर चिट्ठी लिखी" अशुद्ध है। इनमें 'जाना' और 'लिखना' मुख्य क्रियाओं के कारण प्रथम में 'ने' नहीं आना चाहिए, परन्तु द्वितीय में आना चाहिए।

नीचे कुछ उदाहरण अशुद्ध प्रयोगों के दिये जाते हैं; इन्हें हमने एक परीक्षा की कापियों से चुनकर लिख लिया था। इससे तुम देखोगे कि लोग कैसी भद्दी अशुद्धियाँ करते हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित वाक्यों को शुद्ध करो:—

(१) जो क्षत्रिय अपने गुणों से अपने पिता की प्रतिष्ठा न कराया। (२) कोई वीर क्षत्री ने वर्णन कर रहा है। (३) यहाँ पर गिरधर दुष्ट मनुष्य की तुलना सन से किया है। (४) जर्मनी इत्यादि देश अपनी अपनी उन्नति कर लिया। (५) उनको अपने भाग्य पर सन्तुष्ट हुए। (६) जो अपने गुण

से पिता के सम्मान को न बढ़ाया (७) इसको कौन बनाया है? (८) तमाम लोगों ने यह समझते हैं। (९) चीन के रहनेवालों ने इसी कारीगरी के कारण से तमाम संसार में प्रसिद्ध हो गये हैं।

८--पुरुष, वचन, लिङ्ग, भाव आदि के विषय में शब्दों की परस्पर सापेक्षता।

वाक्य में जैसे शब्दों का क्रम एक आवश्यक वस्तु है उसी प्रकार शब्दों की अनुकूलता भी है। क्रिया का रूप अपने कर्त्ता या कर्म के अनुकूल होना चाहिए, विशेषण का रूप अपने विशेष्य के अनुकूल होना चाहिए; इत्यादि बातों से प्रकट है कि वाक्य के शब्द एक दूसरे के रूप की अपेक्षा करते हैं, अर्थात् उनके अनुकूल ही अपना रूप धारण करते हैं। यह विषय रचना के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

(१) क्रिया का रूप किसके अनुकूल होता है?

(क) जब कर्त्ता का चिह्न 'ने' नहीं आता तो क्रिया के पुरुष, वचन, और लिङ्ग, कर्त्ता के अनुकूल होते हैं; जैसे लड़का सोता है या पुस्तक पढ़ता है; लड़के सोते हैं या पुस्तक पढ़ते हैं; लड़की सोती है या पुस्तक पढ़ती है; लड़कियाँ सोती हैं या पुस्तक पढ़ती हैं; रानी बैठी होगी; घोड़े दौड़ेंगे; आदि।

(ख) जब कर्त्ता का चिह्न 'ने' आता है, परन्तु कर्म का चिह्न 'को' नहीं आता तो क्रिया का रूप कर्म के अनुसार होता है; जैसे लड़के ने, या लड़कों ने, या लड़की ने, या लड़कियों ने, या मैंने, या हमने, या तूने; या तुमने, या उसने, या उन्होंने

घोड़ा देखा या घोड़े देखे, या घोड़ी देखी या घोड़ियाँ देखीं।

(ग) जब कर्त्ता का चिह्न 'ने' आता है, और कर्म का चिह्न 'को' भी आता है, तो क्रिया का रूप सदा पुँल्लिङ्ग एकवचन का सा रहता है; जैसे लड़के ने, या लड़कों ने, या लड़की ने, या लड़कियों ने, या मैंने, या हमने, या तूने, या तुमने, या उसने, या उन्होंने, बकरे को, या बकरों को, या बकरी को या बकरियों को, या मुझको, या हमको, या तुझको या तुमको, या उसको, या उनको **मारा** (सदा यही रूप)।

(घ) विधि और सम्भावना के रूप दोनों लिङ्गों में समान होते हैं; जैसे लड़के, तू उठ; लड़की, तू उठ; तुम उठो; आप लिखिए।

(२) एक ही क्रिया के अनेक कर्त्ता

(क) यदि सब कर्त्ता समान लिङ्ग के हों तो क्रिया बहुवचन होगी और उसी लिङ्ग की होगी; जैसे लड़का और घोड़ा जाते हैं; लड़का और घोड़े जाते हैं; लड़के और घोड़ा जाते हैं; लड़के और घोड़े जाते हैं; गायें और बकरियाँ घास चरती हैं।

(ख) यदि सब कर्त्ता लिङ्ग में समान न हों तो क्रिया बहुवचन होगी, और उसका लिङ्ग अन्तिम कर्त्ता के अनुसार होगा; जैसे लड़की और लड़का सोते हैं; लड़का और लड़की सोती हैं।

(ग) यदि सब कर्त्ता समान लिङ्ग के हों और उनके अन्त

में कोई समुदायवाचक शब्द हो तो क्रिया बहुवचन होगी और उसका लिङ्ग कर्त्ताओं के लिङ्ग के समान होगा; जैसे घोड़े और गधे सभी आते हैं; घोड़ियाँ और बकरियाँ सभी आती हैं।

(घ) यदि सब कर्त्ता समान लिङ्ग के न हों और उनके अन्त में कोई समुदायवाचक शब्द हो तो क्रिया बहुवचन तथा पुँल्लिङ्ग होगी, जैसे किताब, क़लम, काग़ज़, सब रक्खे हैं; रुपया, पैसा, अशर्फ़ी, सब रक्खे हैं।

(ङ) यदि कई कर्त्ता हों, परन्तु उन सबसे एक ही भाव या समुदाय का बोध हो तो क्रिया एकवचन होगी; जैसे आपके पास ऋद्धि सिद्धि भरी है; उसके पास धन-धान्य भरा है। जहाँ तक हो असमानलिङ्ग कर्त्ताओं का प्रयोग इस प्रकार नहीं करना चाहिए; क्योंकि ऐसे कर्त्ताओं के आदि में सम्बन्धकारक आदि कोई शब्द आ जाने से क्रिया में असमञ्जस पड़ता है; जैसे मेरा मान और प्रतिष्ठा आपकी ही हुई है; मेरी प्रतिष्ठा और मान आपका दिया हुआ है—ये दोनों वाक्य बहुत भद्दे हैं।

(च) यदि कई 'पुरुषों' के कर्त्ता एक साथ आते हों तो सबसे अन्त में उत्तम पुरुष, उससे पूर्व मध्यम पुरुष, उससे पूर्व अन्य पुरुष रखना चाहिए, और क्रिया को अन्तिम कर्त्ता के अनुसार रखना चाहिए; जैसे वह, आप, और मैं चलूँगा; तुम और हम चलेंगे; वह और हम जाते हैं; वह और तुम देखते हो; वे और तुम जा सकती हो।

(छ) कोई कोई प्रयोग अनियमित होते हैं। जैसे "मोहन को एक पत्र लिखना है", "मोहन को पत्र लिखना चाहिए" में 'मोहन' कर्त्ता और 'पत्र' कर्म है। "यदि मैं पास हो गया तो मिठाई बाँटूँगा" में 'हो गया' भविष्यत्काल के लिए आया है।

(३) एक ही कारक के अनेक शब्द

(क) यदि वाक्य के कई शब्दों में एक ही कारक हो तो प्राय: अन्तिम शब्द के साथ विभक्ति लगाई जाती है; जैसे सुग्रीव, अंगद, और हनुमान् ने रामचन्द्र की सहायता की; रामू, श्यामू, और मोहन को बुलाओ; कुल्हाड़ी, बसूला और आरे से लकड़ी काटी जाती है; रामदत्त और कृष्णदत्त के लिए मिठाई लाओ आदि। परन्तु अवधारण के लिए हर एक के साथ विभक्ति लगाई जा सकती है; जैसे सुग्रीव ने और विभीषण ने रामचन्द्र की सहायता की; तुमको घर से और स्कूल से निकाल दूँगा; घर पर, जंगल में, और सर्वत्र तू विद्यमान है।

(ख) सर्वनाम शब्दों में से हर एक में विभक्ति लगानी चाहिए; जैसे तुमको और उनको देखकर मैं दौड़ा; आपने और मैंने यह काम किया है; उनके लिए और तुम्हारे लिए (अथवा उनके और तुम्हारे लिए) मैं कुछ नहीं कर सकता।

(४) विशेषण और विशेष्य का सम्बन्ध

(क) विशेषण अपने विशेष्य से पूर्व भी आता है और

परे (विधेय में) भी; जैसे यह अच्छा बालक है; यह बड़ी पोथी पढ़ लो; यह बालक अच्छा है; यह पोथी जो तुम पढ़ते हो बड़ी है; मोहन रामू से चतुर है।

(ख) आकारान्त विशेषणों को छोड़कर शेष सब विशेषण दोनों लिङ्गों में समान होते हैं, तथापि कुछ लोग संस्कृत के विशेषणों के स्त्रीलिङ्ग रूप संस्कृत व्याकरण के अनुसार बना लेना अधिक पसन्द करते हैं; जैसे सुन्दर बालक, सुन्दरी बालिका; विवाहित पुरुष, विवाहिता स्त्री।

(ग) आकारान्त विशेषणों के नियम ये हैं—

(१) आकारान्त विशेषण पुँल्लिङ्ग बहुवचन में एकारान्त हो जाते हैं और स्त्रीलिङ्ग के दोनों वचनों में ईकारान्त हो जाते हैं; जैसे काला घोड़ा, काले घोड़े, काली घोड़ी, काली घोड़ियाँ।

(२) पुँल्लिङ्ग एकवचन विशेष्यों के आकारान्त विशेषण सिवाय कर्त्ता और कर्म की उस दशा के जब कि चिह्न 'ने' और 'को' नहीं लगते, एकारान्त हो जाते हैं; जैसे काले घोड़े ने घास खाई; अच्छे बालक को इनाम दो; मीठे आम से रस निकलता है।

(३) कर्म के साथ चिह्न 'को' आने पर उसका परवर्ती आकारान्त विशेषण प्रायः अपना रूप नहीं बदलता; जैसे इन कपड़ों को गीला कर दो; उसने लकड़ियों को सीधा कर दिया परन्तु चिह्न 'को' न रहेगा तो विशेषण का रूप बदल जायेगा; जैसे ये कपड़े गीले कर दो; उसने लकड़ियाँ सीधी कर दीं।

(४) यदि आकारान्त विशेषण के कई विशेष्य हों तो उसका रूप समीपवर्ती विशेष्य के अनुसार होता है; जैसे आम और नारङ्गियाँ मीठी हैं; नारङ्गियाँ और आम मीठे हैं; धुले कोट और टोपियाँ रक्खी हैं; धुली टोपियाँ और कोट रक्खे हैं।

(५) संस्कृत तथा अरबी भाषाओं के आकारान्त विशेषण, जिनका रूप उन्हीं भाषाओं के अनुसार बदल नहीं सकता, न तो इकारान्त होते हैं और न ईकारान्त; जैसे महात्मा, महामना (मनाः); सुधर्मा; उम्दा, ज़रा, ज़्यादा, पैदा, आला, अदना, सालाना, रोज़ाना आदि।

(घ) विशेषण में विभक्ति नहीं लगती, परन्तु जब विशेषण का प्रयोग नाम की तरह होता है तब विभक्ति लगती है; जैसे "निर्धन जनों को दान दो"; "निर्धनों को दान दो" शुद्ध वाक्य हैं; परन्तु "निर्धनों जनों को दान दो" अशुद्ध वाक्य है।

(५) पूरक, कर्म और क्रिया का सम्बन्ध

पूरक अकर्मक और सकर्मक दोनों प्रकार की क्रियाओं में होता है; फिर विशेषण और नाम दोनों पूरक हो सकते हैं।

(क) अकर्मक क्रिया का विशेषण पूरक लिङ्ग तथा वचन में कर्त्ता के अनुसार होता है; जैसे लड़का अच्छा हो गया; लड़के अच्छे हो गये; लड़कियाँ अच्छी हो गईं।

(ख) सकर्मक क्रिया का विशेषण पूरक कर्म के साथ चिह्न 'को' न आने पर कर्म के अनुसार होता है, परन्तु चिह्न

'को' आने पर पुँल्लिङ्ग एकवचन के रूप में रहता है; जैसे तुमने लकीरें मोटी कर दीं; तुमने कपड़े गन्दे कर दिये; तुमने लकीरों को मोटा कर दिया; तुमने कपड़ों को गन्दा कर दिया।

(ग) अकर्मक क्रिया का पूरक यदि नाम है तो वह भाव के अनुसार किसी भी लिङ्ग तथा वचन में आ सकता है; जैसे वे लोग बुड्ढे होकर भी बच्चे बने जाते हैं; तुम लोग घोड़े बनोगे या हाथी ?; हम लोग तुम्हारी दासी या दासियाँ हैं।

(घ) सकर्मक क्रिया का पूरक यदि नाम है तो कर्म के साथ चिह्न 'को' का प्रकट करना और पूरक को एकवचन में रखना अधिक मुहाविरेदार है; जैसे जादूगर ने उन आदमियों को घोड़ा बना दिया; लुटेरे ने उन स्त्रियों को दासी बना लिया।

(ङ) अकर्मक क्रिया के कर्त्ता और पूरक में लिङ्ग-भेद होने की दशा में प्राय: कर्त्ता के अनुसार ही क्रिया रखना अधिक प्रचलित है; जैसे कपड़े गर्द हो गये; सब गुड़ मिट्टी हो गया; स्त्रियाँ सिपाही बन गईं; पारा भस्म हो गया; लकड़ी जलकर कोयला हो गई।

नोट—कभी कभी भाव की बारीकी से निर्णय होता है, अर्थात् कर्त्ता और पूरक में से जिसका भाव अधिक बलवान् होता है उसी के अनुसार क्रिया होती है। जैसे, यदि लकड़ी का भाव बलवान् है और उसे कोयला करना इष्ट नहीं है, किन्तु किसी की लापरवाही या सुस्ती से ऐसा हो गया है तो "लकड़ी जलकर कोयला हो गई" कहना उचित होगा।

परन्तु यदि 'कोयला' का भाव बलवान् है अर्थात् कोयला बनाना ही इष्ट है, कोयला बन जाने की प्रतीक्षा ही की जा रही है, तो "लकड़ी जल कर कोयला हो गया" कहना ठीक होगा।

(६) भाव की अनुकूलता

कितनी ही तरह की विषमताएँ हैं जो रचना को दूषित कर देती हैं; जैसे "आप तो आये, परन्तु तुम्हारे पिताजी नहीं आये" में एक ही व्यक्ति के लिए 'आप' और 'तुम' शब्दों का प्रयोग ख़राब है। "अकबर सन् १५४२ ई० में पैदा हुए; उसके बाप का नाम हुमायूँ था"—इस वाक्य में एक ही व्यक्ति के लिए 'हुए' से आदर और 'उसके' से निरादर सूचित है। "क्या तुम हमको जानते नहीं हो ? मैं तुम्हारा मानमर्दन कर दूँगा"—इसमें भी 'हम' और 'मैं' एक ही व्यक्ति के लिए आये हैं।

वाक्य प्रारम्भ करते हुए मन में एक भाव होना और उसे समाप्त करते करते दूसरे भाव का आ जाना वाक्य को चौपट कर देता है; जैसे "पहले तो उन्होंने मेरी प्रार्थना अस्वीकार की, परन्तु कई बार कहने पर स्वीकार की गई" इसमें कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य का अनुचित मिश्रण है।

इन विषमताओं का अधिक विवरण लिखना हमको इष्ट नहीं, लेखकों को स्वयं विचार रखना चाहिए।

अभ्यास

(१) कोष्ठकों के भीतर जो क्रियाओं के साधारण रूप लिखे हैं उनसे शुद्ध रूप बनाकर वाक्यों में जोड़ो:—

लड़के अभी (सो रहना)। आज मङ्गलवार (होना); मैं कल बुधवार को लखनऊ (जाना)। रामदत्त अभी आये थे, परन्तु उन्होंने तारा के बारे में कुछ नहीं (कहना)। गत परीक्षा में मैंने पाँच प्रश्नों के उत्तर (लिखना), परन्तु एक का उत्तर (छोड़ देना)। तुम अभी दौड़कर बाज़ार से एक आने का दही (ले आना)। मेरा भाई और बहिन (आना)। घोड़ियाँ और घोड़े घास (चरना)। दास दासी सभी (आना)। आप और हम अभी थोड़ी देर में गेंद (खेलना)।

(२) विभक्तियाँ लगाओ:—

तुम—और मैं—मिलकर यह पेड़ कुल्हाड़ी—और बसूले—दो घण्टे—काट डाला। रामू—और श्यामू—स्कूल—पाँच घण्टे रहना पड़ता है।

(३) आवश्यकतानुसार विशेषण का रूप बदलो :—

यह किताब (पीला) काग़ज़ पर (नीला) स्याही से छपी है। नीबू और नारङ्गी (खट्टा) हैं। नीबू और नारङ्गी दोनों (खट्टा) हैं। वाह ! आपने तो हमारे कपड़े (गन्दा) कर दिये। नहीं, मैंने तो आपके कपड़ों को (गन्दा) नहीं किया।

(४) कोष्ठकों के शब्दों में आवश्यक परिवर्तन करो :—

कागज़ जलकर राख (हो जाना)। राजा ने उन लोगों को (अपना) (नौकर) (बना लेना)। श्रीमान् ने मुझको नौकरी करने की आज्ञा (देना); परन्तु अब (आप) (हम) से रुष्ट हो गये।

अध्याय ५

रचना के लिए कुछ उपयोगी विषय

१—गद्य और पद्य में भेद

जिस भाषा में अक्षरों की गिनती या उनके लघुत्व गुरुत्व का विचार नहीं करते उसे **गद्य** कहते हैं। हम लोग गद्य ही में बातचीत करते हैं।

जब अक्षर तोल नापकर किसी नियत संख्या में लिखे जाते हैं, या अक्षरों के लघुत्व गुरुत्व का विचार रखना होता है, तो वैसी भाषा को **पद्य** कहते हैं; जैसे दोहा, चौपाई, भुजंगप्रयात आदि में।

चूँकि पद्य में अक्षरों की नाप की जाती है, इसलिए लिखनेवाले, अर्थात् कवि को कोई कोई शब्द तोड़ मरोड़ डालना पड़ता है, जैसे 'राम' के स्थान में 'रामा', 'रामू'। गद्य लिखने में ऐसा करना अनुचित है।

चूँकि यह पुस्तक गद्य-रचना सिखाने के अभिप्राय से लिखी जाती है, इसलिए पद्य का वर्णन इसमें नहीं किया जाता। हाँ, पद्य का वाच्यार्थ, भावार्थ, तात्पर्य आदि लिखना रचना का एक अङ्ग है; परन्तु उसके लिए छन्दों आदि का लक्षण जानना आवश्यक नहीं है।

२—द्विरुक्ति

एक ही शब्द को दो बार प्रयोग करने का नाम द्विरुक्ति है। इससे कई मतलब निकलते हैं। कभी तो भाव बलवान् हो जाता है, जैसे 'जल्दी जल्दी चलो'; कभी पृथक्ता का बोध होता है, जैसे 'मैं आदमी आदमी से परिचित हूँ', अर्थात् हर एक आदमी से; कभी अधिकता का बोध होता है, जैसे 'बड़े बड़े घर बने हुए थे' अर्थात् बड़े बड़े घरों की संख्या बहुत थी; कभी भेद प्रकट होता है, जैसे 'गेहूँ गेहूँ चुन लो' अर्थात् चने या जौ न लेना; कभी विधेयगत द्वितीय शब्द से उस शब्द का यथार्थ अर्थ मालूम होता है, जैसे 'वही आदमी आदमी है जो परोपकार करे'; अन्य भाव भी प्रकट होते हैं जो सोचने से ज्ञात होंगे।

द्विरुक्ति नाम, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, सब प्रकार के शब्दों में होती है।

३—अलङ्कार

अलङ्कार का अर्थ है शोभित करनेवाला। जैसे मनुष्य की शोभा हार, अँगूठी, कण्ठा, आदि बाहरी भूषणों से, तथा सुशीलता, सत्य, धैर्य्य, आदि भीतरी गुणों से होती है, उसी प्रकार भाषा की शोभा **शब्दालङ्कारों** और **अर्थालङ्कारों** से होती है। शब्दालङ्कार वे हैं जो शब्दों के अधीन हैं और उन शब्दों के स्थान पर दूसरे शब्द लिख देने पर चले जाते

हैं; अर्थालङ्कार वे हैं जो अर्थ के कारण हैं और शब्दों के बदल देने पर भी बने रहते हैं।

(क) **अनुप्रास** 'परसत पद पावन' में 'प' अक्षर कई बार आकर एक प्रकार का चमत्कार पैदा करता है, परन्तु यदि इन शब्दों को बदलकर कहें 'छुवत चरण पावन' तो वह चमत्कार जाता रहता है; इसी लिए यह शब्दालङ्कार हुआ। इस विशेष अलङ्कार का नाम है **अनुप्रास**।

(ख) **श्लेष**—भले वंश को पुरुष सो, निहुरै बहु धन पाय।
नवै धनुष सद्वंश को, जिहि द्वै कोटि दिखाय॥

इस उदाहरण में 'सद्वंश' और 'द्वै कोटि' के दो दो अर्थ हैं, एक तो धनुष के लिए, और दूसरा पुरुष के लिए। 'अच्छे बाँस' से बना हुआ धनुष झुकता है, और उसके दोनों 'किनारे' एक दूसरे के निकट आते हैं। 'अच्छे कुलवाला पुरुष', जिसके पास 'दो करोड़ रुपये' होते हैं, झुककर चलता है। यहाँ चूँकि दो अर्थ आने का चमत्कार शब्दों ही के कारण हुआ है, इस लिए शब्दालङ्कार है। इस विशेष अलङ्कार का नाम श्लेष है।

(ग) **उपमा**—जो राउर अनुशासन पाऊँ।
कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ॥
काचे घट जिमि डारौं फोरी।
सकौं मेरु मूलक इव तोरी॥

कन्दुक (गेंद) बिना प्रयास उठाया जा सकता है; कचा

घड़ा बड़ी आसानी से फूट जाता है, मूली तोड़ने की ही चीज़ है; अतः ब्रह्माण्ड की समानता गेंद, कच्चे घड़े और मूली से दिखाई गई है। यदि, 'कन्दुक' शब्द के स्थान पर 'गेंद' शब्द कर दें, तब भी समानता का भाव दूर नहीं हो सकता, अतः यहाँ अर्थालङ्कार है। इस विशेष अलङ्कार का नाम **उपमा** है। 'कन्दुक' शब्द उपमान है, 'ब्रह्माण्ड' शब्द उपमेय है, 'इव' शब्द उपमासूचक अव्यय है, हलकापन इस उपमा का धर्म है।

(घ) **रूपक**— राम कथा सुन्दर करतारी।
संशय विहँग उड़ावनहारी॥

इसमें रामकथा और करतारी की एकरूपता दिखाई गई है। यह नहीं कहा गया कि रामकथा करतारी के समान है, बल्कि रामकथा करतारी ही है और संशय-रूपी पत्तों को उड़ा देती है। इसमें भी शब्दों के बदल देने पर चमत्कार नहीं जाता; इसलिए यह अर्थालङ्कार है, इस विशेष अलङ्कार का नाम 'रूपक' है।

विशेष विवरण देना हमारा लक्ष्य नहीं है, इसलिए इस विषय को हम यहीं छोड़ते हैं।

४—रस

यदि कोई सुन्दर काव्य (गद्य या पद्य) पढ़कर या सुनकर तुम्हारी तबीअत फड़क उठी, चित्त में आनन्द की तरङ्गें उठने लगीं, या जैसा वर्णन है वैसा ही भाव तुम्हारे मन में उदित हो गया तो समझो कि तुमको उस काव्य का रस

मिल गया। यदि लड़ाई का वर्णन है तो तुम्हारा मन भी वीर रूप हो जायगा; यदि किसी की दुःख-कथा है तो तुम्हारी आँखों से करुणा के मारे आँसू टपकने लगेंगे; यदि हँसी का विषय है तो तुम हास्य के कारण लोट-पोट हो जाओगे। बस यही रस है। अच्छे कवियों की उक्ति में यही जादू है।

यह तो निश्चय है कि तुम रस का अनुभव करते हो; कोई सुन्दर वर्णन पढ़कर या सुनकर मस्त हो जाते हो; परन्तु रस का पूरा विषय समझना अभी तुम्हारे लिए कठिन है। इसी लिए हम रस के मोटे मोटे भेद बताकर यह विषय छोड़ते हैं।

रस नौ हैं:—

(१) शृंगार—इसमें स्त्री-पुरुष के प्रेम का वर्णन होता है। रामायण में तुलसीदासजी ने राम-विवाह में इस रस की दिव्य झलक कहीं कहीं दिखा दी है; गन्दे उपन्यासों में प्राय: इसका भ्रष्ट रूप दिखाया जाता है। उदाहरण:—

कंकण किंकिणि नूपुर ध्वनि सुनि।
कहत लषन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुन्दुभी दीन्ही।
मनसा विश्वविजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिर चितये तेहि ओरा।
सियमुख शशि भये नयन चकोरा॥

(२) हास्य—हँसी लानेवाले विषय में। 'बीरबल के

लतीफ़े', 'हँसोड़' आदि पुस्तकों का प्रधान रस यही है। रामायण में 'नारद-विवाह' में इसके बहुत से उदाहरण मिलेंगे; जैसे—

पुनि पुनि मुनि उसकहिं अकुलाहीं।
देखि दशा हरगण मुसुकाहीं॥

(३) करुण—शोक या दुःख की कथाओं में। जैसे लक्ष्मण के शक्ति लगने पर रामचन्द्रजी कहते हैं--

यथा पङ्ख बिनु खगपति दीना।
मणि बिनु फणि करिवर कर-हीना॥
अस मम जिवन बन्धु बिन तोहीं।
जो जड़ दैव जियावै मोहीं॥

(४) रौद्र—क्रोध की दशा में। जैसे—

क्रुद्धे कृतान्त समान कपि तनु स्रवत शोणित राजहीं।
मर्दहिं निशाचर कटक भट बलवन्त जिमि घन गाजहीं॥

(५) वीर—उत्साह की अवस्था में। जैसे—

जो राउर अनुशासन पाऊँ। कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊँ।
काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी॥

(६) भयानक—भय की दशा में। जैसे—

भरि भुवन घोर कठोर रव रवि वाजि तजि मारग चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥

(७) वीभत्स—घृणा की दशा में। जैसे—

मज्जहिं भूत पिशाच बैताला।

केलि करहिं योगिनी कराला॥

काक कङ्क धरि भुजा उड़ाहीं।

एक ते एक छीनि धरि खाहीं॥

(८) अद्‌भुत—विस्मय की दशा में। जैसे—

दिखरावा मातहिं निज, अद्‌भुत रूप अखण्ड।

रोम रोम प्रति राजहिं, कोटि कोटि ब्रह्मण्ड॥

(९) शान्त—चित्त की शान्ति की दशा में। जैसे—

मो सम दीन न दीन हित, तुम समान रघुवीर।

अस विचार रघुवंशमणि, हरहु विषम भवपीर॥

इनके अलावा किसी किसी के अनुसार एक दसवाँ रस वात्सल्य भी है जिसमें पुत्रादिकों का प्रेम होता है; जैसे—

जनक जाति अवलोकहिं कैसे।

सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥

५—गुण

काव्य का प्रभाव हृदय पर तीन प्रकार से पड़ता है, इसी लिए काव्य में तीन गुण कहे गये हैं—(१) माधुर्य्य, (२) ओज, (३) प्रसाद।

माधुर्य्य उस गुण का नाम है जो अपनी मधुरता से चित्त को प्रसन्न कर देता है; वह प्रायः शृङ्गाररस, करुणरस, और शान्तरस में आता है; उसमें अनुस्वार, र, ण, स आदि अक्षर, छोटे शब्दों का प्रयोग प्रायः होता है। जैसे—

भये विलोचन चारु अचञ्चल।
मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगञ्चल॥

ओज उस गुण का नाम है जो अपने प्रभाव से श्रोता के चित्त को दीप्त सा या विस्तृत सा कर देता है; वह वीररस, वीभत्सरस, और रौद्ररस आदि में अच्छा होता है; इसमें संयुक्ताक्षर, ट, ठ, ड, ढ, श, ष, आदि अक्षर, विकट रचना और बड़े बड़े समास होते हैं। जैसे—

भये क्रुद्ध युद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोण सायक कसमसे।
कोदण्ड धुनि सुनि चण्ड अति मनुजादि भय मारुत ग्रसे॥
मन्दोदरी उर कम्प कम्पित कमठ भूधर अति त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दशन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

प्रसाद उस गुण का नाम है जिसके सुनने मात्र ही से काव्य के अर्थ का निश्चय हो जाता है। यह सब रसों में और सब प्रकार की रचनाओं में प्रयुक्त होता है। अर्थ की सरलता ही इसका विशेष लक्षण है। जैसे—

अवध पुरी अति रुचिर बनाई।
देवन सुमन वृष्टि झरि लाई॥
राम कहा सेवकन्ह बुलाई।
प्रथम सखन अन्हवावहु जाई॥

६—विराम चिह्न

यद्यपि हिन्दी में पहले एक ही चिह्न '।' लगाया जाता था जिसे छेवा या पाई कहते हैं, तथापि अब अँगरेज़ी के चिह्न

लगाने का रिवाज हो गया है। पूर्ण वाक्यों के अन्त में अब भी छेवा ही लगाया जाता है।

कामा (,)—यह चिह्न सब से छोटा विराम है। जहाँ बहुत सी चीज़ों का नाम गिनाया जाता है, जहाँ सम्बोधन किया जाता है, जहाँ कोई आश्रित-वाक्य आता है, या जहाँ कहीं अर्थ में कुछ रुकावट का भाव होता है, वहाँ यही चिह्न लगता है। जैसे (१) धन, धान्य, वस्त्र, आभूषण सभी आवश्यक हैं। (२) भाई देवदत्त, व्यापार कभी न छोड़ना। (३) हमारा भाई, जो पहले अति धनहीन था, अब धनाढ्य हो गया है। (४) इतना ही नहीं, किन्तु तुम्हारे मित्र भी बहुत से हैं।

सेमीकोलन (;)—यह अर्ध-विराम वहाँ लगता है जहाँ पूर्ण विराम से कम, परन्तु कामा से अधिक, रुकना हो; जहाँ मिश्रित वाक्य के बड़े बड़े खण्ड अलग होते हों। जैसे, "आप कहते हैं कि जापान, अमरीका, आदि देशों ने व्यापार से लाभ उठाया है; यह सत्य है परन्तु उदाहरण के लिए दूर देशों को क्यों जाते हो; अपने देश ही में मारवाड़ियों को देख लो।

प्रश्नसूचक चिह्न (?)—जब प्रधान वाक्य में कोई प्रश्न पूछा जाता है तो उसके अन्त में यह चिह्न लगता है; जैसे "एक रुपये में कितने आने होते हैं ?" परन्तु यदि प्रश्न-वाक्य किसी मिश्रित वाक्य के आश्रित हो तो यह चिह्न नहीं लगता जैसे "बताओ कि एक रुपये में कितने आने होते हैं।"

इंगितसूचक चिह्न (!) विस्मयादिसूचक अव्ययों के आगे, तथा वाक्यों के आगे भी लगता है; जैसे "वाह वाह ! व्यापार में भी क्या आनन्द है !" कभी कभी दो-तीन चिह्न भी लगाये जाते हैं; जैसे "वाह ! ख़ूब हुआ !! तुम लखपती हो गये !!!"

उलटे कामा (" ") उस वाक्य या वाक्यांश के आदि और अन्त में लगाते हैं जो कहीं से उद्धृत किया जाता है ।

उदाहरण—उसने कहा, "मैं तुम सबको अच्छी तरह जानता हूँ ।" दो एक शब्दों के उद्धृत करने में, या जिस वाक्य में उलटे कामा लगे हों उसके बीच में किसी अंश के उद्धृत करने में इकहरे कामा लगते हैं। उदाहरण—(१) वह ऐसा मूर्ख है कि 'परम' को 'पर्म' लिखता है; (२) हनुमान् ने लक्ष्मण से कहा "मैं जब जब सुग्रीव से लड़ाई की तैयारी करने के लिए कहता हूँ, तब तब वह 'अभी बहुत समय है' कह-कर टाल देते हैं ।"

डैश—(—) या पड़ी पाई । जब एक वाक्य कहते समय बीच में और कोई आवश्यक विचार उसी के लगाव में या उसी के समझाने के लिए आये तो इसके आदि में, या आदि अन्त दोनों में, जैसा अवसर हो, यह चिह्न लिखते हैं । जैसे "परमात्मा पर सभी लोग—सिवाय दुष्टों के—भरोसा करते हैं ।"

संक्षेपसूचक चिह्न—जब किसी शब्द का प्रथम अक्षर लिखकर या और किसी भाँति उसका रूप छोटा करना चाहते

हैं तो उसके आगे एक बिन्दु या शून्य बना देते हैं। जैसे रु० = रुपया; सं० = संवत्।

७—मुहाविरे

'मुहाविरा' अरबी शब्द है जिसका अर्थ है 'बातचीत, प्रश्नोत्तर'। परन्तु अब यह शब्द पारिभाषिक हो गया है। कोई भी ऐसा वाक्यांश जिसका शब्दार्थ न लेकर कोई विलक्षण अर्थ लिया जाय, मुहाविरा कहलाता है; जैसे "तुम्हारा लड़का क्यों न बिगड़े, तुम तो उसे सिर पर चढ़ाते हो"—यहाँ वक्ता का भाव यह नहीं कि तुम अपने लड़के को उठाकर अपने मस्तक पर बिठालते हो; किन्तु भाव यह है कि तुम उसका लाड़-प्यार उचित से अधिक मात्रा में करते हो, जिससे उसकी आदत बिगड़ती है और धृष्टता बढ़ती है। इसलिए "सिर पर चढ़ाना" मुहाविरा है।

यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि मुहाविरों और उनके लाक्षणिक अर्थों में कोई न कोई सम्बन्ध होता है। ऊपर के उदाहरण में यह सम्बन्ध यों दिखा सकते हैं—जब हम किसी को प्यार करते हैं तो उसे स्पर्श करते हैं; अधिक प्यार करते हैं तो उसे गोद में उठा लेते हैं; यदि और भी अधिक प्यार करते हैं तो उसे "सिर पर चढ़ाते हैं"। इसी प्रकार पहले जब कोई पाप कर्म करता था तो उसका मुँह कोयले आदि से काला करके उसे नगर में घुमाते थे ताकि लोग डरें और वैसा पाप न करें। अब यद्यपि मुह रँगा नहीं

जाता तथापि 'मुँह काला होना' का अर्थ है 'कलङ्कित होना'। विचार करने से इसी प्रकार का कोई कारण या रहस्य हर एक मुहाविरे में मिलेगा। इसका अभ्यास करना विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त रोचक होगा।

मुहाविरे इतने प्रकार के हैं और इतने अधिक हैं कि उनका अन्त पाना असम्भव है; जो जिस प्रकार का जीवन जहाँ व्यतीत करता है उसको उसी जीवन से सम्बद्ध मुहाविरे वहीं मिल जाते हैं। ग्रामजीवन के कुछ ऐसे (प्रायः अश्लील) मुहाविरे हैं जिन्हें नागरिक न तो जानते हैं और न प्रयोग में लाना चाहते हैं। इसके विरुद्ध नागरिकों के विशेष मुहाविरे ग्रामीणों तक नहीं पहुँच पाते। 'मुँह में मुसका देना' (कुछ न बोलना); "गू-लकड़ी करना" (पिष्टपेषण करना), आदि देहाती मुहाविरे हैं।

मुहाविरे कोई एक अकेला आदमी नहीं बनाता; वे भाषा के प्रवाह में धीरे धीरे बन जाते हैं। उनके शब्दों में प्रायः परिवर्त्तन भी नहीं कर सकते। जैसे 'हाथ धो बैठना' मुहाविरा है जिसका अर्थ है 'खो देना'; इसे 'हस्त धो बैठना', 'कर धो बैठना', 'हाथ साफ़ कर बैठना' नहीं कह सकते। "हाथ साफ़ करना" दूसरा मुहाविरा है जिसका अर्थ है 'मारना'।

मुहाविरों के प्रयोग से भाषा में लालित्य तथा चमत्कार आता है; मुहाविरेदार भाषा बहुत पसन्द की जाती है। मुहाविरों का प्रयोग पुस्तकों तथा बोलचाल की भाषा से सीखा जा सकता है।

आँख मारना, आँख लगाना, आँख बदलना, मुँह लगाना, मुँह फेरना, मुँह दिखाना, हाथ डालना, हाथ खींच लेना, हाथ कटाना, हाथ धोकर पीछे पड़ना, हाथ मलना, सिर मूँड़ना, सिर देना, सिर लेना, सिर हिलाना, पीठ दिखाना, पीठ फेरना, पेट काटना, पेट खलाना, पेट भरना, बग़लें झाँकना, घुटने टेकना, मत्था टेकना, पैर उखड़ना, अपने पैरों खड़ा होना, तलवों से लगना, रोएँ खड़े होना, पानी का बुल-बुला, पानी पी पीकर, पानी भरना, मिट्टी में मिल जाना, मिट्टी हो जाना, गर्द हो जाना, बाई पच जाना, हवा का रङ्ग देखना, हवा लगना, ज़मीन आसमान के क़ुलावे मिलाना, आकाश पाताल एक कर देना, घर करना, पसीना पसीना हो जाना, तिवरी बदलना, अरण्य-रोदन, किङ्कर्त्तव्यविमूढ़, पिष्ट-पेषण, भूड़ के लड्डू, आँधी के आम, कौड़ियों के मोल।

(२) इन अर्थों को मुहाविरों के द्वारा प्रकट करने का उद्योग करो:—

वह लज्जित हो गया। उसने बड़ा क्रोध किया। रामू ने श्यामू को धमकाया। वे लोग इधर-उधर भाग गये। उसको बड़ा घमण्ड है! वह वस्तु ख़राब हो गई। वह वहाँ से भाग गया। वह तुम्हारा बड़ा प्यार करता है। वह अपने शत्रु को मार डालेगा। वह बड़ा उद्योग करता है।

(३) इन मुहाविरों के भावों में अन्तर बताओ:—

(क) ख़ाक छानना, ख़ाक डालना। (ख) चेहरा

उतरना, रङ्ग उतरना। (ग) मुँह बनाना, बात बनाना। (घ) ख़ून उबलना, ख़ून बिगड़ना। (ङ) सिर धुनना; सिर हिलाना।

८—कहावतें।

मुहाविरों और कहावतों में भेद है। मुहाविरे वाक्यांश होते हैं और स्वतन्त्र रूप से व्यवहृत नहीं होते; कहावतें वाक्य होती हैं, और स्वतन्त्र रूप से अपना अर्थ रखती हैं। कहावतों को 'मसला', तथा 'लोकोक्ति' भी कहते हैं।

मुहाविरों की तरह कहावतों का भी वाच्यार्थ प्राय: नहीं ग्रहण किया जाता, किन्तु प्राय: वाच्यार्थ के समान अर्थ ग्रहण किया जाता है। जैसे "जिसकी लाठी उसकी भैंस" में 'लाठी' से तात्पर्य है शारीरिक बल, सैनिक बल, संघटन बल आदि; और 'भैंस' से तात्पर्य है सम्पत्ति, जायदाद, राज्य आदि। यदि किसी प्रकरण का विषय यह हो कि जो बलवान् है वह निर्बलों को दबाकर सब सम्पत्ति अपने अधिकार में करता है तो उस विषय की पुष्टि के लिए "जिसकी लाठी उसकी भैंस" कहावत कही जायगी।

इस प्रकार अपना कथन पुष्ट या सबल करने के लिए, या किसी बात को साफ़ साफ़ शब्दों में न कहकर आड़ से कहने के लिए, या उपदेश, उपालंभ आदि के लिए कहावतों का प्रयोग किया जाता है। इनसे भाषा रोचक हो जाती है, और भावों की पुष्टि होती है। मुहाविरों की तरह कहावतों में भी प्राय: परिवर्तन नहीं हो सकता।

लोकप्रचलित अन्य कहावतों के अतिरिक्त तुलसीदास, सूरदास, कबीरदास, घाघ, भड्डरी, रहीम, वृन्द आदि हिन्दी के कवियों, तथा संस्कृत, फ़ारसी आदि भाषाओं के कवियों तथा लेखकों की अनूठी उक्तियाँ भी भाषा में बहुत प्रचलित हैं। जैसे—"सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु;" "मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलैं विरञ्चि सम"; "जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं, कहहु तूल केहि लेखे माहीं" (तुलसी)। "सूरदास यह काली कामरि चढ़े न दूजो रंग"; "ऊधो मन न भये दस बीस" (सूरदास)। "राति निरमली दिन को घटा, कहैं 'घाघ' यह बरषा लटा"। "उलटा पलटा बादर धावै, भागौ भड्डर पानी आवै।" "रहिमन मोहिं न सुहाय अमिय पिआवै मान बिन"। "तेते पाँव पसारिए जेती लम्बी सौर (वृन्द)"। "विद्या ददाति विनयम्"। "धनं दानाय भुक्तये"। "बुजुर्गी ब अक़्लस्त न बसाल"।

कहावतों के प्रयोग के विषय में हमें दो बातें कहनी हैं। जिस विषय पर तुम लिखते हो या बोलते हो उसकी बातों के अनुकूल अर्थात् समान अर्थवाली जो कहावत हो उसी का प्रयोग करो। और यदि किसी कहावत का प्रयोग तुमसे कराया जाय तो उसमें चपकते हुए मौक़े का उदाहरण दो।

हम कई कहावतों का प्रयोग नीचे लिखते हैं:—

(१) नाच न जाने आँगन टेढ़ (अपनी अयोग्यता स्वीकार न करना तथा काम बिगड़ने का दोष दूसरों को देना)—

रामदत्त का लिखा पत्र उसका बाप न पढ़ सका; पूछने पर उसने कहा कि क़लम मोटा था और काग़ज़ कम था; तब बाप ने कहा, "ठीक है नाच न जाने आँगन टेढ़ा"।

(२) एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है। (एक भी दुष्ट या अनिष्टकारी व्यक्ति से सब समाज दूषित हो जाता है)—किसी स्कूल का एक विद्यार्थी पड़ोस के बाग़ से आम चुरा लाता था; कई बार ऐसा होने पर बाग़ के मालिक ने हेडमास्टर से शिकायत की कि आपके विद्यार्थी बड़े चोर हैं। हेडमास्टर ने हँसकर कहा "सब विद्यार्थी तो चोर नहीं हैं, परन्तु, एक मछली सारे तालाब को गन्दा करती है"।

(३) ऊँची दुकान फीका पकवान। (बाहरी चहक भड़क बहुत, परन्तु भीतरी तत्त्व कुछ भी नहीं)—ठाकुर साहेब बड़े ठाट-बाट के साथ बाहर निकलते हैं; बातें ऐसी करते हैं कि मानो इनके समान उदार कोई है ही नहीं। एक दिन एक बाबू साहेब उनके यहाँ गये तो उन्होंने एक गिलास गुड़ का शरबत भेज दिया; बाबू साहेब ने अपने मन में कहा कि "ऊँची दुकान, फीका पकवान"।

(४) एक पंथ दो काज। (एक ही काम या उद्योग से दो या अधिक मतलब सधना)—क्यों भाई, इस बरसात में अयोध्याजी क्यों जाते हो? उ० वहाँ सावन का मेला भी देखेंगे, और राजा साहेब से मुलाक़ात भी करेंगे, एक पंथ दो काज हो जायेंगे।

(५) गधे की गोन में नौ मन का धोखा। (अल्प मात्रा में बहुत अन्तर नहीं पड़ सकता)—एक भिखारी के यहाँ चोरी हो गई; उसने रिपार्ट की कि मेरे २५००) चले गये। थानेदार ने कहा "गधे की गोन में नौ मन का धोखा कैसे हो सकता है ?"

कुछ कहावतों के केवल अर्थ लिखे जाते हैं:—

(१) आँखों के अन्धे नाम नयनसुख—यथार्थ में अयोग्यता है, परन्तु बातचीत लम्बी-चौड़ी है।

(२) दमड़ी की बुढ़िया टका सिर मुँड़ाई—जितना व्यय असली चीज़ में नहीं, उससे कहीं अधिक उसके दुरुस्त रखने में है।

(३) देखिए ऊँट किस करवट बैठता है—अभी मालूम नहीं कि परिणाम अच्छा होगा या बुरा।

(४) चार दिन की चाँदनी फिर अँधियारा पाख—यह चहक महक स्थायी नहीं है।

(५) अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता—कोई बड़ा काम अकेले किसी व्यक्ति से नहीं हो सकता।

(६) दान की बछिया के दाँत नहीं देखे जाते—बिना प्रयास के जो कुछ मिल जाय उसके गुण-दोषों पर विचार नहीं किया जाता।

(७) भई गति साँप छछूँदर केरी—किसी काम के करने से हानि और न करने से भी हानि।

(८) का वर्षा जब कृषी सुखानी—किसी वस्तु के अभाव में यदि किसी का कुछ काम बिगड़ गया तो पीछे से उस वस्तु का मिलना व्यर्थ है।

(९) खोदने को पहाड़, निकलने को मुसरी—बड़े उद्योग का फल बहुत छोटा।

(१०) अपने पूत को कोई काना नहीं कहता—अपनी किसी वस्तु की कोई निन्दा नहीं करता।

बहुत सी कहावतें अभ्यास के लिए नीचे दी जाती हैं।

अभ्यास

१—निम्नलिखित कहावतों के अर्थ बताओ और उनके उदाहरण दो :—

(१) भैंस के आगे बीन बाजे भैंस खड़ी पगुराय। (२) काला अक्षर भैंस बराबर। (३) ऊधो की लेनी न माधो की देनी। (४) नौ नगद न तेरह उधार। (५) अल्पारंभः क्षेमकरः। (६) अति सर्वत्र वर्जयेत्। (७) प्रथमग्रासे मक्षिकापातः। (८) रस्सी जल गई, ऐंठन न छूटी। (९) अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना। (१०) बहुते जोगिन मठ उजाड़। (११) सात पाँच की लाठी, एक जने का बोझ। (१२) जैसे नागनाथ तैसे साँपनाथ। (१३) अधजल गगरी छलकत जाय। (१४) सरग से गिरा तो खजूर में अटका। (१५) मेंढक को जुकाम होना।

२—इन अर्थों के प्रकट करनेवाली कहावतें बताओ:—

(क) बड़े आदमियों के साथ उनके आश्रितों को भी दुःख होता है।

(ख) न इतना सामान होगा और न यह काम होगा।

(ग) प्रधान लोग तो बुरे हैं ही, छोटे छोटे लोग उनसे भी अधिक बुरे हैं।

(घ) स्वास्थ्य ठीक रहने से सब प्रकार का सुख भोग सकते हैं।

(ङ) अपना बहुत बड़ा ऐब नहीं देखते, दूसरे में थोड़ा ऐब देखकर अप्रसन्न होते हैं।

अध्याय ६

सन्दर्भ-शुद्धि

अभी तक जो कुछ लिखा गया है उससे शुद्ध वाक्य लिखने में सहायता मिल सकती है। परन्तु एक ही वाक्य से काम नहीं चलता। रचना में वाक्यों के समूह आते हैं और हमें देखना पड़ता है कि वाक्यों के तारतम्य में कोई बाधा न पड़े और जो भाव हम प्रकट करना चाहते हैं वह सुन्दर रीति से प्रकट हो जाय।

दो प्रकार से भाव प्रकट करने की आवश्यकता होती है। (१) जब कि कोई वाक्य, या वाक्यसमूह, गद्य या पद्य, दिया हुआ हो और हमसे कहा जाय कि इसका अर्थ लिखो या इसका भीतरी भाव बताओ, या इसकी व्याख्या करो, या इसे अपने शब्दों में प्रकट करो, आदि। (२) जब कि कोई विषय बतलाकर हमसे कहा जाय कि अमुक के नाम एक पत्र लिखो, या निबन्ध लिखो। हर एक के बारे में कुछ इशारे दिये जाते हैं।

१—अन्वय

अन्वय का अर्थ है शब्दों का ठीक ठीक क्रम, जैसे कर्त्ता कहाँ होना चाहिए, क्रिया कहाँ आनी चाहिए, कर्म, करण आदि कारक या क्रियाविशेषण आदि अव्यय कहाँ होने

चाहिएँ । इसका वर्णन पहले हो चुका है । गद्य के वाक्य तो ठीक अन्वय में होते ही हैं, परन्तु पद्य के वाक्य प्रायः ठीक अन्वय में नहीं होते, क्योंकि छन्दोभङ्ग बचाने के लिए, तुक मिलाने के लिए और पद्य में लय या गति ठीक रखने के लिए शब्दों के स्थान बदल दिये जाते हैं। अन्वय लिखने में हमें शब्दों का क्रम ठीक कर देना चाहिए; और तोड़े मरोड़े शब्दों के ठीक रूप ब्राकेटों के भीतर रख देने चाहिएँ। यदि कोई शब्द गुप्त हैं तो उन्हें भी यथास्थान ब्राकेटों के भीतर प्रकट कर देना चाहिए । अर्थ लिखने की आवश्यकता नहीं ।

उदाहरण—

(१) प्रभुहि चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज-मीन-जुग, जनु विधुमण्डल डोल ।।

अन्वय—लोल लोचन, प्रभुहि चितै पुनि महि चितै, राजत; जनु मनसिज-मीन-जुग विधुमण्डल (में) डोल खेलत ।

(२) दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि ।
सोच नहीं वित-हानि को, जो न होय हित-हानि ।।

अन्वय—रहीम कहि (कहते हैं कि) दुरदिन परे सब पहिचानि भूलत; जो हित-हानि न होय (तो) वित-हानि को सोच नहीं (है) ।

(३) यह हृदय कलापी शीश ऊँचा उठा के ।
मुदित फिर लगा था नाचने गीत गा के ।।

प्रियजन यदि बाधामुक्त होवें किसी के।
द्विगुणित उसके हों क्या नहीं मोद जी के॥

अन्वय—यह हृदय कलापी शीश ऊँचा उठा के गीत गा के मुदित (होकर) फिर नाचने लगा था। यदि किसी के प्रिय जन बाधामुक्त होवें (तो) क्या उसके जी के मोद द्विगुणित नहीं हों ?

अभ्यास

निम्नलिखित पद्यों के अन्वय लिखोः—

(१) पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुवीर।
विस्मय हर्ष न हृदय कछु, पहिरे बल्कल चीर॥

(२) दुसह दुराज प्रजान में, क्यों न करै दुख दुन्द।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चन्द॥

(३) समय है अनमोल, कुकर्म में।
तुम विनष्ट करो उसको नहीं॥

२—अर्थ या वाच्यार्थ

दिये हुए शब्दों का जो साधारण अर्थ निकलता हो वह वाच्यार्थ है। जहाँ तक हो सके ऐसा अर्थ अपने शब्दों के द्वारा देना चाहिए। यदि कोई युक्ति-विशेष हो तो उसका सरल अर्थ दे देना चाहिए। उपमा आदि अलङ्कारों को खोल देना चाहिए। यदि हो सके तो प्रकरण भी दे देना चाहिए। नया भाव लाने की आवश्यकता नहीं है; परन्तु दिया हुआ कोई भाव छोड़ना नहीं चाहिए।

(१) अन्वय के प्रथम उदाहरण का वाच्यार्थ यह है:—

सीताजी की आँखें कभी रामचन्द्र की ओर फिरती हैं और कभी पृथ्वी की ओर; इस प्रकार चञ्चल होकर शोभित हो रही हैं; ऐसा मालूम होता है जैसे चन्द्रमा के बिम्ब में कामदेव-रूपी दो मछलियाँ कूद-कूदकर खेलती हों।

(२) अन्वय के द्वितीय उदाहरण का वाच्यार्थ यह है:—

रहीम कवि कहते हैं कि जब किसी के बुरे दिन आते हैं तब उसके पूर्व-परिचित लोग भी उसकी सहायता नहीं करते। उसके धन की हानि तो होती ही है, परन्तु उससे अधिक हानि यह है कि लोग उससे हेत बात नहीं रखते।

(३) अन्वय के तृतीय उदाहरण का वाच्यार्थ यह है:-

जैसे वर्षा ऋतु में प्रसन्न होकर मोर मस्तक उठाकर नाचते हैं और बोलते हैं, उसी प्रकार मेरा मन (अमुक विषय से) प्रसन्न होकर उछलने सा लगा और उत्साहित हो गया। जब किसी के प्यारे लोग किसी कष्ट से छूट जाते हैं तो स्वभावत: उसके मन को बड़ा ही आनन्द प्राप्त होता है।

अभ्यास

वाच्यार्थ लिखो:—

(१) जाइ देखि आवहु नगर, सुखनिधान दोउ भाइ।
करहु सफल सब के नयन, सुन्दर बदन दिखाइ॥

(२) बात अपनी ही सुनाता है सभी।
पर छिपाये भेद छिपता है कहाँ॥

जब किसी का दिल पसीजेगा कभी।
आँख से आँसू कढ़ेगा क्यों नहीं॥

(३) प्रेम की अकथ कहानी को आद्योपान्त कौन वर्णन कर सकता है? यदि कुछ भी हम इसका वर्णन करना चाहें तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि भक्ति, आदर, ममता, आनन्द, वैराग्य, करुणा आदि जो भाव प्रतिक्षण मनुष्य के हृदय में उठा करते हैं उन सबों के मूल तत्त्व को एक में मिला कर उसका इत्र निकाला जाय तो उसे हम 'प्रेम' इस पवित्र नाम से पुकार सकेंगे।

३—तात्पर्यार्थ, सारार्थ, मतलब, आशय, अभिप्राय, सरलार्थ, संक्षेपार्थ, भावार्थ

इन शब्दों में प्रायः थोड़ा ही थोड़ा अन्तर है। इनमें एक एक शब्द का अलग अर्थ देना आवश्यक नहीं होता; परन्तु भाव आवश्यक है। वाच्यार्थ समझकर उसका मतलब अपने शब्दों में, संक्षेप रीति से, कह देना **तात्पर्यार्थ** है, वही **अभिप्राय** है, वही **आशय** है, वही **मतलब** है, वही **सारार्थ** है। इन सब में शब्दों की ओर कम, परन्तु भाव की ओर अधिक, ध्यान देना पड़ता है; उपमा, रूपक आदि अलङ्कारों का भाव दो एक शब्दों के द्वारा प्रकट किया जा सकता है; कोई बात जो वाच्यार्थ में प्रकट नहीं होती, इन अर्थों में प्रकट कर दी जाती है। इसलिए एक अंश में तो ऐसे अर्थ वाच्यार्थ से छोटे हो जाते हैं, परन्तु दूसरे अंश में बढ़ जाते हैं।

सरलार्थ और **संक्षेपार्थ** में शब्दों की कमी पर ध्यान रक्खा जाता है; इनमें भाव सब होने चाहिएँ, परन्तु शब्दों की कमी होनी चाहिए, अन्य बातें तात्पर्यार्थ के समान हैं।

भावार्थ जानने के लिए और भी गहरे जाना पड़ता है; इसमें देखा जाता है कि कवि या लेखक के मन में क्या बात थी; उसने किस आन्तरिक बात को इन शब्दों के द्वारा प्रकट करना चाहा है। भावार्थ प्रायः बहुत थोड़े शब्दों में प्रकट किया जाता है। हम ये सब बातें उसी "प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि" दोहे में दिखलाते हैं:—

तात्पर्यार्थ—प्रेम की उमंग आते ही सीताजी रामचन्द्रजी की ओर देखने लगती हैं, परन्तु लज्जावश फिर आँखें नीची कर लेती हैं। यही दशा बराबर हो रही है और आँखें कभी इधर कभी उधर जाती हैं। इस दशा में भी सीताजी की अलौकिक शोभा है।

सरलार्थ—सीताजी का कभी रामचन्द्रजी की ओर और कभी पृथ्वी की ओर देखना अत्यन्त शोभाजनक है।

भावार्थ—सीताजी के हृदय में प्रेम और लज्जा की लड़ाई सी हो रही है। अथवा, यदि लज्जा बाधा न डालती तो सीताजी रामचन्द्रजी की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखतीं। अथवा, सीताजी के मन में रामचन्द्रजी के प्रति असीम प्रेम है, परन्तु लज्जा के कारण वह पूर्ण रूप से बाहर नहीं प्रकट होने पाता।

उदाहरण २—अभिमानी मनुष्य का हृदय यद्यपि ऊपर से

सन्तुष्ट दिखाई पड़ता है, तो भी अन्दर वह व्यथित रहता है। उसके आनन्द की अपेक्षा उसकी चिन्ताएँ अधिक होती हैं। उसकी घोर चिन्ताएँ उसकी अस्थियों के साथ नहीं जल जातीं; चिता भी उन्हें दहन नहीं कर सकती। वह अपने जड़ शरीर के बाहर अपने विचारों को ले जाता है।

तात्पर्यार्थ—अभिमानी मनुष्य ऊपर ही से सुखी दिखाई देते हैं, परन्तु भीतर बड़े चिन्तित रहते हैं। जब कि उन्हें अपने अभिमान के अनुकूल सब सामान रखने में हज़ारों चिन्ताएँ लगी रहती हैं तब उनके मन में शान्ति कैसे रह सकती है। वे जब तक जीते हैं घोर चिन्ताओं के शिकार बने रहते हैं, और कदाचित् मरने के पीछे भी उन चिन्ताओं से न मुक्त होते हों।

भावार्थ—अभिमान में सुख नहीं, किन्तु यावज्जीवन बड़ी बड़ी चिन्ताएँ रहती हैं।

अभ्यास

निम्नलिखित गद्य पद्य का तात्पर्यार्थ तथा भावार्थ लिखो:—

(१) अच्छे और रंगभूमि में खेले जाने योग्य नाटकों के अभाव का एक मुख्य कारण नाटक खेलनेवाली मंडलियों और कम्पनियों का न होना भी है। शौक़िया हिन्दी-नाटक खेलने-वाली मंडलियाँ या व्यवसाय के तौर पर इस काम को चलाने-वाली कम्पनियाँ नहीं के बराबर हैं। जो हैं भी, उनमें अच्छे पात्र, प्रबन्धक आदि नहीं हैं। यदि ऐसी कम्पनियाँ

बड़े बड़े शहरों में स्थापित हो जायँ, और वे अच्छे अच्छे नाटकों का अभिनय करें, तो अच्छे नाटक-लेखक भी तैयार होने में देर न लगे।

२—ग्रह-गृहीत पुनि वात वश, पुनि तेहि बीछी मार।
ताहि पियाई वारुणी कहहु कवन उपचार॥

[इसमें कैकेयी का पुत्र होना (ग्रह-गृहीत), राम के वन-वास का कारण होना, दशरथ की मृत्यु (बीछी मार), और राज्य ग्रहण (वारुणी) की ओर भरतजी का इशारा है; भावार्थ में ये बातें आनी चाहिएँ]

३—कहा कहौं विधि की अविधि, भूले परे प्रवीन।
मूरख को सम्पति दई, पंडित सम्पविहीन॥

(४) एक पुरुष—तुम्हारे चेहरे पर दुष्टता की झलक दिखाई देती है।

दूसरा पुरुष—ओ हो ! मुझे तो अब मालूम हुआ कि मेरा चेहरा भी एक आईना है [भाव—तुम्हारी दुष्टता का प्रतिबिम्ब मेरे चेहरे पर पड़ा है; अर्थात् यथार्थ में तुम दुष्ट हो।]

४—व्याख्या

व्याख्या में बहुत लिखना पड़ता है। शब्दार्थ, तात्पर्यार्थ, भावार्थ, सब व्याख्या में शामिल हैं; आवश्यकतानुसार उदाहरण भी देने चाहिएँ; उपमा आदि अलंकारों का पूर्ण विवरण देना चाहिए; यदि कथाओं का इशारा हो तो उन्हें संक्षिप्त रूप से लिखना चाहिए; मार्के के शब्दों का विवरण भी

देना चाहिए। इस प्रकार भली भाँति समझाने के लिए जो कुछ भी आवश्यक हो उसका समावेश 'व्याख्या' में होता है।

उदाहरण—

उदित उदयगिरि मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥

व्याख्या—यह उस समय का वर्णन है जब जनकपुर में सीता-स्वयंवर के अवसर पर श्रीरामचन्द्रजी शिव-धनुष तोड़ने के लिए चलने पर हुए और मंच पर खड़े हो गये। तुलसीदासजी रघुवर की उपमा बालपतंग अर्थात् उदय होते हुए सूर्य के बिम्ब से देते हैं, क्योंकि दोनों में बड़ा प्रताप है; मंच ही उदयाचल है; रामचन्द्रजी ही तरुण सूर्य हैं। जैसे सूर्य के उदय होने पर कमल खिलते हैं, उसी प्रकार रामचन्द्रजी के प्रताप से सज्जन लोग प्रसन्न हैं। जैसे कमलों पर बैठे हुए भ्रमर उनका रस पीकर हर्षित होते हैं उसी प्रकार इन सज्जनों के नेत्र भी हर्षित हो रहे हैं। भाव यह है कि रामचन्द्रजी को मंच पर खड़े होते देखकर सज्जन प्रसन्न हो गये और उनकी दृष्टि निर्निमेष रूप से उधर ही आकृष्ट हो गई। इस दोहे में रूपक अलंकार बड़ी सुन्दर रीति से निवाहा गया है।

अभ्यास

व्याख्या लिखो—

(१) परशुरामजी के स्वरूप का वर्णन है—

संत वेष करनी कठिन, बरनि न जाय सरूप।
धरि मुनि तनु जनु वीररस, आयउ जहँ सब भूप॥
(२) कनक कनक ते सौ गुने, मादकता अधिकाय।
वह खाये बौरात हैं, यह पाये बौरायँ॥

५—अनुलेख

अनुलेख उसे कहते हैं जिसमें अध्यापक या अन्य कोई जन कुछ बोलता जाता है और छात्र उसे लिखते जाते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि जो कुछ हम सुनते हैं वह कान की शक्ति से कम, और समझ की शक्ति से अधिक, समझते हैं। जब हम किसी को ऐसी भाषा बोलते सुनते हैं जिससे हम परिचित नहीं तो उसके शब्द और अक्षर हमें स्पष्ट नहीं सुनाई देते, कारण यही है कि हम उसे समझते नहीं हैं। इसलिए अनुलेख की शुद्धि के वास्ते यह आवश्यक है कि जो कुछ बोला जा रहा है उसे हम समझते हों।

अनुलेख में जो कुछ लिखाना होता है उसे पहले एक बार या दो बार पढ़कर सुना दिया जाता है, ताकि छात्र लोग उसका विषय समझ लें; तब थोड़ा थोड़ा करके बोला जाता है। बोलने में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि जो शब्द-समूह एक बार बोला जाय वह सुसम्बद्ध हो। जैसे निम्नलिखित वाक्य में जितने जितने अंश एक बार बोलने चाहिएँ उनके अन्त में एक एक लम्बी लकीर लगी है—यदि

हमें जीवित रहना है। और सभ्यता की दौड़ में। अन्य जातियों की बराबरी करना है तो हमें। श्रमपूर्वक। बड़े उत्साह से। सत् साहित्य का उत्पादन। और प्राचीन साहित्य की रक्षा। करनी चाहिए। यदि हम यही वाक्य असम्बद्ध अंशों में इस प्रकार विभाजित करें—"यदि हमें जीवित—रहना है और सभ्यता—की दौड़ में अन्य—जातियों की बराबरी करना—है तो हमें श्रम—पूर्वक बड़े—उत्साह से सत् साहित्य—का उत्पादन और—प्राचीन साहित्य—की रक्षा करनी चाहिए"—तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। बोलने में शुद्धि रखना अध्यापक का काम है, अतः हम इतना ही लिखकर यह विषय छोड़ते हैं।

छात्रों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए कि कौन से अक्षर सस्वर और कौन से अस्वर बोले जा रहे हैं; जैसे 'निरपराध' शब्द में द्वितीय अक्षर 'र' सस्वर बोला जायगा; 'परस्पर' शब्द में स् की ध्वनि अस्वर होगी। यदि अक्षर-शुद्धि और शब्द-शुद्धि के अध्याय ध्यानपूर्वक पढ़े गये हैं तो अनुलेख में अशुद्धियाँ नहीं होंगी।

अभ्यास

निम्नलिखित वाक्यों में एक साथ बोले जानेवाले अंश अलग करो:—

(१) सत्य के तेज से वह मोम गल गया, पेड़ ठूँठे का ठूँठा रह गया; जो कुछ तूने दिया और किया सब दुनिया के दिख-

खाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिए; केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नहीं दिया।

(२) कर उपकार न रक्खे मन में बदले की अभिलाषा।
पुरस्कार की चाह न कुछ भी साधुवाद की आशा॥
और कहूँ क्या धन्यवाद सुन अतिशय मन सकुचाता।
ऐसा मित्र तभी मिलता है जब द्रवता है धाता॥

६—अनुवाद

एक भाषा में कही हुई बात को दूसरी भाषा में कहना अनुवाद या 'उल्था' कहलाता है। अँगरेज़ी, फ़ारसी, बँगला, संस्कृत आदि के ग्रन्थों का अनुवाद हिन्दी में हो गया है।

अनुवाद दो प्रकार का होता है, (१) भावानुवाद जिसमें मूल भाषा से भाव लेकर उसे दूसरी भाषा में लिखते हैं; इसमें लेखक को स्वतन्त्रता होती है; (२) शब्दानुवाद जिसमें प्रत्येक शब्द का अनुवाद करना पड़ता है। अनुवादक को दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। मूल भाषा की जो बातें उसी रूप में दूसरी भाषा में प्रकट नहीं हो सकतीं उन्हें उनके समान रूप में प्रकट करना चाहिए। अनुवाद की भाषा भी जहाँ तक हो मुहाविरेदार होनी चाहिए। उदाहरण के लिए हम अँगरेज़ी गद्य का कुछ अंश हिन्दी में अनुवादित करके लिखते हैं।

A merchant who had several clerks, found that one of them was in the habit of coming late to the office. He warned him that his conduct would lead him into trouble, and told him that he had better mend his ways. The clerk replied that the fault was not his, but that of his watch, which did not keep good time. A few days afterwards he was late again, and the merchant said to him, "Tomorrow either you or I will have something new." "What is that, Sir?" asked the man. "Either you will have a new watch, or I shall have a new clerk," replied his master.

हिन्दी-अनुवाद—एक सौदागर को, जिसके यहाँ कई लेखक थे, ज्ञात हुआ कि उनमें से एक की आदत कार्य्यालय में देर से आने की थी। उसने उसे यह सूचना दी कि तुम अपनी करनी से दुःख में पड़ोगे, और यह कहा कि अच्छा हो यदि तुम अपनी चाल सुधारो। लेखक ने उत्तर दिया कि दोष मेरा नहीं है, किन्तु मेरी घड़ी का है जो कि ठीक समय नहीं देती। कुछ दिनों के पीछे वह फिर देर करके आया तब सौदागर ने उससे कहा, "कल या तो तुमको या मुझको कोई नई चीज़ मिलेगी।" उस आदमी ने पूछा, "महाशय, वह

कौन सी वस्तु है ?" उसके स्वामी ने उत्तर दिया, "या तो तुम एक नई घड़ी लाओगे या मैं एक नया लेखक रखूँगा।"

एक पद्य का भी नमूना दिया जाता है—

The world is such a happy place
That children, whether big or small,
Should always have a smiling face,
And never, never sulk at all.

हिन्दी-अनुवाद—यह संसार ऐसा हर्ष से भरा स्थान है कि बच्चों को, चाहे वे बड़े हों या छोटे, सदा हँसमुख रहना चाहिए, और कभी भी तनिक उदास न होना चाहिए।

अभ्यास

निम्न-लिखित अँगरेज़ी गद्य तथा पद्य का शब्दानुवाद हिन्दी में करो:—

(1) A thief was once brought before a Raja and charged with having made a hole in the wall of a man's house and stolen a box of jewels. He fell upon his kness and wept, and then told the Raja that he was a poor and honest man whose right hand gave him great trouble by its wicked ways. Said he " My hand made the hole and went through and stole the jewels

while I lay outside the wall. I did not go into the house and so I am not a burglar." To which the Raja replied, " You are indeed to be pitied, poor man, and the wicked right hand shall go to prison for five years. You must try and stay outside the gaol, while the hand serves its sentence, as you did while it stole the jewels."

(2) Speak gently, kindly to the poor—
Let no harsh tone be heard ;
They have enough they *must* endure,
Without an unkind word.

(3) Moments are useless
When trifled away ;
So work while you work,
And play while you play.

अध्याय ७

प्रबंध व पत्र-लेख

१—प्रबन्ध-रचना में किन किन बातों की आवश्यकता है ?

किसी विषय के लिखने में पहले कहे हुए कोई दोष न होने चाहिएँ। सबसे पहले देखना चाहिए कि लेखक का पूरा भाव प्रकट करने के योग्य शब्द आये हैं या नहीं; अगर लेखक ने ऐसे शब्द जोड़े हैं जिनसे इष्ट बात पाठक के हृदय में जम जाती है और उसमें कोई सन्देह नहीं रहता तो लेख अच्छा है।

बनावटी या अनुचित बढ़ावे के लेख धोखेदार होते हैं। यह बात सत्य है कि कोई कोई बड़े लेखक इस प्रकार की भाषा लिखते हैं; परन्तु पहले पहल उनका अनुकरण करना योग्य नहीं है; क्योंकि अधिक पढ़ने और बहुत से लेख लिख जाने के कारण बहुत से विचार और योग्य शब्द उनके वश में हो गये हैं; आनुपूर्वी से वाक्यों के जमाने में, विषय का ढाँचा सुधारने में अर्थात् विषय के भिन्न भिन्न भागों पर यथोचित प्रधानता प्रकट करने में वे लोग योग्यता रखते हैं।

और उनकी बनावट सजावट सम रहती है, अर्थात् जिस उत्तमता से एक भाग लिखा जाता है उसी से सब भाग लिखे जाते हैं। अगर वे अपने विषय-रूप पुरुष को रेशमी वस्त्र पहनाते हैं तो शिर से पैर तक सब असली रेशम होता है। परन्तु लड़कों के इतना बल नहीं होता; वे लोग अपने विषय-पुरुष को केवल खारुवा या गज़ी-गाढ़ा पहना सकते हैं और उसके ऊपर स्थान स्थान पर पुराने रेशम के टुकड़े लगाना बड़ा भद्दा है।

बनावटी लेखकों का मुख्य मतलब यह होता है कि पाठकों का ध्यान खींचकर अपने प्रबन्ध पर लगा दें; परन्तु यह मतलब और रीति से भी पूरा हो सकता है। जिस विचार को तुम बलवान् बनाना चाहते हो उसे योग्य और प्रभावशाली शब्दों में लिखो।

कहा जाता है कि लेख का गौरव उपमा, रूपक और अनुप्रास आदि अनेक प्रकार के अलंकारों से बढ़ जाता है। यह सत्य है; इनसे उसी प्रकार शोभा बढ़ती है जैसे पुरुष को हार, अँगूठी, कंकण आदि पहनाने से। पर विचार करके देखना चाहिए कि अगर पुरुष में कानापन, बहरापन, लँगड़ापन, तुच्छता, डर आदि न हों अर्थात् लेख में अशुद्ध व्याकरण, द्विरुक्ति, विषमता आदि न हों तो ऐसा पुरुष और ऐसा लेख बिना अलङ्कारों के भी अधिक शोभा पावेगा। मगर नकटे को चाहे हार पहनाओ चाहे जो कुछ उसकी सूरत पर

यह छटा कभी नहीं आवेगी। अगर रूप और अलङ्कार दोनों हों तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ?

मेरा आशय यह नहीं है कि लड़कों को उपमा आदि अलङ्कारों का प्रयोग बिलकुल करना ही न चाहिए, बल्कि अगर वे कर सकें तो बहुत ही अच्छी बात है; यह नहीं, किन्तु लड़के बिना जाने ही अलङ्कारों का प्रयोग करते हैं। मेरा आशय केवल यह है कि अलङ्कारों का प्रयोग कठिन होता है और उनमें बहुधा अशुद्धियाँ रह जाती हैं। तब भी अगर इनका प्रयोग किया जावे तो शुद्ध किया जावे; उपमान और उपमेय का सम्बन्ध बराबर झलकता रहे और बीच में अन्य अयोग्य वस्तु न आने पावे; जैसे "इस संसार-सागर की दीर्घ यात्रा में व्योपार ही जहाज़ है और जो लोग इसके तत्त्व को भली भाँति जान लेते हैं उनका झंडा सदा ही ऊँचा रहता है और वे लोग कपटियों के जाल में कभी नहीं फँसते" इस वाक्य में संसार तो सागर के समान है और उससे पार उतरने के लिये व्योपार जहाज़ के समान है; यह रूपक अलङ्कार है; परन्तु रूपक का निर्वाह अंत तक नहीं किया गया, 'झंडा ऊँचा रहना' मनुष्य की समता सेना से दिखलाता है; इसका भी निर्वाह पूरा न करके मनुष्य की समता मछलियों से दिखलाई जो जाल में फँस जाती हैं।

२—प्रबन्ध का ढाँचा

कहा जा चुका है कि प्रबन्ध का मुख्य मतलब पाठकों

को अपना भाव समझाना तथा उनका ध्यान अपने लेख पर जमाये रखना है; इसलिए लेखक को चाहिए कि अपने विषय का स्थान सोच विचार कर करे जिससे यह मतलब पूरा रहे।

प्रबन्ध के मोटे मोटे भाग पहले अलग अलग छाँट कर रख लेने चाहिएँ; यही भाग पीछे से बढ़ाकर प्रबन्ध को पूरा कर देंगे। फिर इनमें से हर एक के स्वाभाविक छोटे छोटे विभाग हो सकते हैं जिनमें से हर एक का वर्णन अलग अलग वाक्य-समूह या 'पाराग्राफ़' में किया जावेगा। इस विभाग के लिए कोई नियम बँधा नहीं है; और यथार्थ में हर विषय के लिए अलग अलग विभाग करने पड़ेंगे; परन्तु अच्छे प्रकार सोचने से और अभ्यास से यह काम हो सकता है।

अगर पहले से इसका अभ्यास नहीं है तो सोचो कि दिये हुए विषय पर तुमको क्या क्या ज्ञात है, जो जो बात निकलती आवे उसका संकेत या इशारा भर लिखते जाओ और आगे सोचते रहो। जब देखो कि अब कोई नई बात नहीं आ रही है तो सोचना बन्द कर दो और लिखे हुए इशारों को फिर से पढ़कर अगर कोई बात दो बार आ गई हो तो उसे काट दो। अब देखो कि किस बात का सम्बन्ध या लगाव किसी दूसरी बात से पाया जाता है; जिससे उसका सम्बन्ध पाया जावे उसी के पास रक्खो, यह भी देख लो कि उसके पहले रक्खें या पीछे; जिस बात में कारण हो या किसी

तरह पहले होनेवाली वस्तु हो उसे पहले रक्खो, दूसरी को पीछे। इसी तरह करते करते थोड़े ही से शीर्षक रह जावेंगे; इनका भी आगे पीछे रखने का विचार करके तब लिखना आरम्भ करो। इस काट छाँट और जमाव में कुछ समय लगेगा, परन्तु समय चले जाने पर दुःख न करो; क्योंकि जब ईंट, चूना, लकड़ी, आदि उपस्थित हो गये और दीवारों, द्वारों, खिड़कियों का पूरा नक़शा बन गया तो जोड़ने में कोई क्लेश न होगा।

लिखते लिखते अगर कोई बात नई स्मरण में आ जावे तो उसे वहीं पर मत रक्खो, किन्तु उलट कर अपने ढाँचे में देखो और जहाँ उसकी ठीक जगह हो वहीं पर बिठाल दो।

३—प्रारम्भ

बहुधा लेख का प्रारम्भ करना बहुत कठिन पड़ता है; और ढाँचे के बहुत से शीर्षकों को देखकर लेखक निर्णय नहीं कर सकता कि कहाँ से प्रारम्भ करें। वस्तुतः यह काम कठिन भी है, क्योंकि अगर किसी अप्रधान वस्तु से प्रारम्भ करें तो पाठकों का हृदय पहले ही से मुरझा जाता है; अगर सबसे प्रधान बात पहले ही लिख दें और अन्त तक उसका निर्वाह न बन पड़े तो दुर्बलता प्रतीत होती है। मुख्य प्रयोजन यह है कि आदि से अन्त तक विषय ऐसा जकड़ दिया जावे कि पाठकों का चित्त उससे न हटे; ज्यों ज्यों आगे बढ़े त्यों त्यों ज़ंजीर की कड़ियों की तरह आनुपूर्वी से विषय फैलता जावे

और अन्त के समीप फिर सिकुड़ने लगे, यहाँ तक कि समाप्त होने पर पाठकों के चित्त में यह भाव पैदा हो जावे कि इस विषय में जो कुछ जानना था सब हो गया, इससे मन में एक प्रकार का आनन्द सा आ जाता है।

अच्छे लेखक कई प्रकार से अपना प्रबन्ध आरम्भ करते हैं।

(१) मोटी तरह से अपने प्रबन्ध का विषय बतला देना जैसे इस विषय पर मैं कुछ कहना या लिखना चाहता हूँ, या इस विषय की यह परिभाषा है या अर्थ है। ध्यान रहे कि पाठकों को जिस बात के जानने की सम्भावना है उसी से लेख का प्रारम्भ करना चाहिए। ऐसी बात भी न लिखे जिसे पाठक न जानते हों या जिसके पढ़ने से उनका चित्त लेख पर न जम सके।

(२) कोई छोटी सी कहानी या कथा लिखना। कहानी ऐसी हो जो तुम्हारे प्रबन्ध पर पाठक का ध्यान बाँध देती हो और विषय पर भली भाँति चपकती हो अर्थात् विषय साफ़ साफ़ प्रकट करती हो, परन्तु बहुत लम्बी चौड़ी न हो।

(३) किसी अच्छी कहावत या कवि के वचन का लिखना। इसका भी सम्बन्ध लेख्य विषय से पूरा पूरा होना चाहिए।

(४) कभी कभी विषय का एक-दम प्रारम्भ करना। यह बहुधा ऐसी दशा में किया जाता है जब लेख्य विषय लेखक या पाठक दोनों को अच्छी तरह मालूम हो।

ऊपर लिखे हुए ढंगों में से कौन सा ढंग किस विषय पर लगाना चाहिए इसका कोई विशेष नियम नहीं बतलाया जा सकता; किसी विषय में एक भला मालूम होता है और किसी में दूसरा। सब के उदाहरण आगे मिलेंगे।

४—फैलाव

प्रारम्भ करने के बाद हर एक विशेष बात को एक एक वाक्य-समूह या 'पाराग्राफ़' में लिखना चाहिए। साधारणतः हर 'पाराग्राफ़' के आदि में उस विशेष बात का तत्त्व रहता है जिससे पाठक के हृदय में देखते ही जम जाता है कि इस पाराग्राफ़ में यह बात वर्णन की गई है। उस विशेष तत्त्व के समझाने के लिए अगर दूसरे शब्दों में कुछ लिखना चाहते हो तो लिखो, अगर उसके कई भेद हों जिनको तुम बतलाना चाहते हो तो बतलाओ और उनका एक दूसरे से विवेक दिखलाओ; उस बात के पुष्ट करने के लिए अगर कोई उदाहरण है तो उसे यहाँ पर लिखो; या और जो कुछ उस बात के विषय में तुम्हें कहना है यहीं पर कह दो। दूसरी बात इस स्थान पर कदापि न कहो।

कभी कभी इससे उलटी रीति पर चलते हैं, अर्थात् उदाहरणों के द्वारा अपने विषय का वर्णन करके और भेद आदि प्रकट करके सबका तत्त्व अन्त में लिखते हैं, यह ढङ्ग भी अच्छा है।

जिस प्रकार एक पाराग्राफ़ में वाक्यों का स्थापन होता है उसी प्रकार लेख में पाराग्राफ़ों का स्थापन किया जाता है; अर्थात् एक पाराग्राफ़ समाप्त करने पर दूसरे पाराग्राफ़ में वह बात लिखो जिसका सम्बन्ध किसी प्रकार पहली बात से मिलता हो और पाठकों को यह न मालूम हो कि अरे! कहाँ से कहाँ आ गये।

अपने प्रबन्ध की मोटी मोटी बातों को लिखते समय ध्यान रहे कि सब बातों की प्रधानता एक-सी नहीं होती; कोई कोई बातें बहुत मुख्य और विषय के प्राण-रूप होती हैं; इनका पूरा और विस्तार सहित वर्णन चाहिए; कोई साधारण होती हैं जिनका थोड़ा ही वर्णन करना होता है; और कोई प्रसंगत: आ जाती हैं जिनका इशारा-मात्र बहुत है। यह भी स्मरण रहे कि भिन्न भिन्न विषयों में एक ही बात की प्रधानता घट बढ़ जाती है।

५—समाप्ति

अपने शीर्षकों को पाराग्राफ़ों में लिखते लिखते जब सब लिख चुको तो लेख को समाप्त करो। प्रबन्ध की समाप्ति में भी कुछ कठिनता रहती है; अर्थात् अगर एकदम समाप्त कर दोगे तो पाठकों को प्रतीत होगा कि तुम बोझ सा लेकर गिर पड़े हो और उनके अब तक उत्साहित चित्त में एक धक्का सा लगेगा। इस दोष के मिटाने के लिए अन्तिम पाराग्राफ़

में पहले लिखी हुई बातों का सारांश या उनका परिणाम या फल दिखलाओ; या उस विषय से जो कोई शिक्षा मिलती हो उसे लिख दो, या उससे अगर कोई बुराई निकलती हो तो उससे बचने का उपाय बतलाओ; अगर आवश्यकता हो तो कभी कभी अपनी सम्मति प्रकट करो। परन्तु स्मरण रहे कि अन्तिम पाराग्राफ़ सबका निचोड़ है और उसके लिखने में जैसी चतुरता दिखलाओगे वैसा ही अच्छा प्रभाव पाठकों के हृदय में स्थिर हो जावेगा। इसी लिए उसे अत्यन्त बलयुक्त व प्रभावशाली शब्दों में लिखना चाहिए।

६—प्रबन्ध के भेद

विषय के भेदों पर निगाह करके प्रबन्ध के कई भेद किये जा सकते हैं—

(१) बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं जिनको हमने आँखों से देखा है और जिनके बारे में हम बहुत कुछ जानते हैं, जैसे जीव, वृक्ष, इमारतें आदि। इनका वर्णन बहुत कठिन नहीं होता, और जो प्रबन्ध ऐसे विषयों पर लिखे जाते हैं उन्हें 'वर्णन-प्रबन्ध' कह सकते हैं; क्योंकि जो कुछ हमने देखा है उसी का वर्णन माँगा जाता है।

(२) कुछ बातें ऐसी हैं जिनका वर्णन समय के आगे पीछे के हिसाब से होता है, जैसे किसी का जीवनचरित्र या कोई इतिहास की बात। ऐसे प्रबन्धों को 'ऐतिहासिक

प्रबन्ध' कह सकते हैं; और इनका लिखना वर्णन-प्रबन्ध से कुछ कठिन है क्योंकि इनके बारे में अपनी भी सम्मति प्रकट करनी पड़ती है।

(३) बहुत सी विज्ञान की बातें, या नई निकाली हुई बातें, साइंस विषयक बातें आदि ऐसी हैं जो बँधो बँधाई हैं अर्थात् उनमें अपनी सम्मति का स्थान नहीं है, परन्तु उनका आनुपूर्वी से लिखना कठिन है। इन पर जो प्रबन्ध लिखे जाते हैं उन्हें 'विज्ञान-प्रबन्ध' कह सकते हैं।

(४) बहुत से विषयों पर अपने मन ही से सोचकर लेख लिखना पड़ता है, उनके लाभ, हानि, उपाय आदि बतलाने पड़ते हैं और अपनी पूरी सम्मति देनी पड़ती है। ऐसे विषयों को 'मानसिक प्रबन्ध' कह सकते हैं। इनका लिखना और भी कठिन है।

(५) बहुत से विषय ऐसे हैं जिन पर भिन्न भिन्न मनुष्य और और सम्मति देते हैं; कोई उनके अनुकूल कहता है, कोई प्रतिकूल। ऐसे प्रबन्धों को 'तर्क-प्रबन्ध' कह सकते हैं क्योंकि एक दूसरे से विपरीत दो सम्मतियों पर अपना ध्यान जमाना और उनको मन में तौलकर एक निश्चय करना पड़ता है। ऐसे प्रबन्ध सबसे कठिन होते हैं और इनके लिखने में बड़ी तीव्र बुद्धि व सोच विचार की आवश्यकता होती है।

(६) कभी कभी कोई कहावत देकर उस पर लेख लिखाया जाता है। इस दशा में कोई ऐसा वृत्तान्त वर्णन किया जाता

है जिस पर कि वह कहावत चपक जावे। ऐसे प्रबन्धों को 'उद्धरण प्रबन्ध' कह सकते हैं।

प्रबन्ध के आरम्भ करने, बढ़ाने और समाप्त करने आदि के जो मोटे नियम दिये गये हैं उन सबका काम 'तर्क प्रबन्ध' में अधिक पड़ता है; और तरह के प्रबन्धों में बहुधा थोड़ा जानने से भी काम चल जाता है।

७—लिखने की रीति

हम बतला चुके हैं कि बनावटी लेख लड़कों के लिए आवश्यक नहीं हैं; क्योंकि अगर रङ्गीन भाषा लिखी भी गई और उसमें अशुद्धियाँ हुईं या रङ्गीनियत के लिए विचारों को हानि उठानी पड़ी तो उससे कोई लाभ नहीं है।

वाक्य इतना भारी न बनाया जावे कि मतलब डूब जावे और पढ़नेवाले का चित्त उकता जावे। यदि एक ही वाक्य के लिए बहुत विषय हों तो उसे तोड़कर दो वाक्यों में कर दो, परन्तु तोड़ स्वाभाविक स्थान पर हो। यह, वह; इस, उस आदि सर्वनामों पर पूरा ध्यान रहे; दूर पड़ जाने से ये शब्द अपना पूरा काम नहीं देते और सन्देह रह जाता है। इसी प्रकार एकवचन और बहुवचन का भी चेत रक्खो। जो शब्द एक बार जिस वचन में होगा उसी वचन में पूरे वाक्य भर में रहेगा। इसी तरह लिङ्ग का भी भेद जानो।

उदाहरण के लिए यह वाक्य लो 'व्यापार से आज ही

कल नहीं; किन्तु हमारे देश में ३०० वर्ष पहले जब तिजारत करने के लिए यूरोप से व्यापारी लोग आये और कई शहरों में कोठियाँ बनाईं तो उनको बड़ा ही भारी लाभ हुआ, जिससे वे धीरे धीरे सारे देश के मालिक हो गये, और अब भी उसके लिए उद्योग करते जाते हैं।" देखो कितना संदिग्ध वाक्य है। "आज ही कल नहीं" इसकी क्रिया कहाँ है? अगर 'कोठियाँ बनाईं' का कर्त्ता 'व्यापारी लोग' है तो कर्त्ता का चिह्न 'ने' कहाँ है? 'उसके लिए'; किसके लिए 'व्यापार के लिए', या कोठियाँ बनाने के लिए, या देश के मालिक होने के लिए? यदि इसको तोड़कर कई वाक्यों में रक्खें तो ऐसा रूप होगा—"व्यापार से आज ही कल नहीं; किन्तु पहले भी लाभ होता था। देखो ३०० वर्ष पहले हमारे देश में तिजारत करने के लिए यूरोप से व्यापारी लोग आये और उन्होंने कई शहरों में कोठियाँ बनाईं। उनको इतना लाभ हुआ कि वे आज-कल सारे देश के मालिक हो गये हैं और अब भी व्यापार के लिए उद्योग करते जाते हैं।" अब अर्थ साफ़ है।

अप्राकरणिक विषय के दोष से बचाने के लिए अपने विषय को भली भाँति देख लेना चाहिए। जितना तुमसे पूछा जावे उतना ही लिखो, बढ़ाने का उद्योग न करो। जैसे अगर व्यापार के लाभ पूछे जाते हैं तो केवल उसके लाभ ही लिखो, हानि का विषय छोड़ दो। अगर 'व्यापार' पर लेख माँगा जावे तो हानि-लाभ दोनों दिखलाओ।

अगर अपने लेख में किसी कहावत या कवि के वचन का उद्धरण करते हो तो स्मरण रक्खो कि यह चीज़ें बहुत न आने पावें; क्योंकि तुम्हारा प्रबन्ध मांगा जाता है न कि कवियों का। केवल ऐसे स्थानों पर उद्धरण करो, जहां पर वे अच्छे प्रकार बैठ जाते हों और उनसे तुम्हारे लेख की पुष्टता या शोभा बढ़ती हो। दूसरों के वचन में कोई अदल-बदल न करो, किन्तु वे जैसे हैं वैसे ही रख दो, क्योंकि अपने विषय के अनुकूल उनके बदलने में तुम अशुद्धि कर जाओगे।

कभी कभी किसी विचार के गौरव के लिए अर्थात् उसे बलवान् बनाने के लिए प्रश्नरूप में या इङ्गितबोधक अर्थात् विस्मयादिसूचक शब्दों में वाक्य लिखा जाता है। कभी कभी इसी मतलब से निर्जीव पदार्थों का आभाषण ऐसे करते हैं मानो वे जीवधारी होकर आगे खड़े हैं। जैसे साधारण वाक्य "हर आदमी जानता है कि व्यापार से धनप्राप्ति होती है"। प्रश्नरूप से "ऐसा कौन है जो व्यापार की धनप्राप्ति को न जानता हो?" विस्मयवाचक रूप से "अहाहा! व्यापार भी कैसी अनुपम वस्तु है जिससे इतनी धन प्राप्ति होती है!" आभाषणरूप से "धन्य रे व्यापार! मनुष्य को धनप्राप्ति कराने की अद्भुत शक्ति तुम्हीं में है।" यहां पर अन्तिम तीन वाक्यों में साधारण वाक्य से कहीं अधिक ज़ोर है। परन्तु स्मरण रहे कि यह उपाय वहीं करने चाहिएँ जहां पाठकों के विशेष ध्यान खींचने का काम हो।

व्यर्थ पुनरुक्ति एक दोष है पर कहीं कहीं उससे प्रबन्ध बली हो जाता है। ऐसे स्थानों में पाठकों को बार बार एक ही वस्तु के पढ़ने से घबराहट नहीं होती किन्तु उनका हृदय और भी फड़क उठता है। जैसे "व्यापार ही से भूखे तृप्त हो गये हैं; व्यापार ही से नंगे विभूषित हो गये हैं; व्यापार ही से निर्धन धनी हो गये हैं; व्यापार ही से खँडहर महल बन गये हैं; और व्यापार ही से रंक राव हो गये हैं।" पुनरुक्ति दोष तभी खटकता है जब उससे कोई चमत्कार नहीं होता।

ऊपर के वाक्य में एक बात और भी देखने योग्य है कि पहले तो व्यापार का थोड़ा प्रभाव अर्थात् भूखों को तृप्त कर देना वर्णन किया गया, फिर उससे बड़ा प्रभाव, वस्त्राभूषणादि का देना, तब उससे भी बड़ा खँडहरों को महलों में परिणत कर देना, और अन्त में सबसे बड़ा प्रभाव, रंक को राव बना देना वर्णन किया गया है। मालूम होता है कि लेखक वर्णन की सीढ़ी में नीचे से ऊपर को चढ़ता चला जाता है।

८—प्रबन्धों के नमूने

अब आगे सब प्रकार के प्रबन्धों के कुछ नमूने दिये जाते हैं। इनमें से कुछ तो ढाँचे के रूप में हैं, कुछ पूर्ण रूप में हैं, और कुछ दोनों में हैं। पहले के कई नमूनों के दोनों रूप दिये गये हैं, पर आगे चलकर एक ही एक रूप। ढाँचे को बढ़ाकर पूर्ण प्रबन्ध सहज ही में लिख सकते हैं।

(क) वर्णन-प्रबन्ध

(१) गाय

पहले इस प्रबन्ध का ढाँचा दिखलाकर तब उसी के शीर्षकों पर लेख लिखा जावेगा।

(१) **जाति**—चौपाया, और चौपायों (घोड़ों आदि) से भेद, सींगदार, खुर फटे, दाँतों की एक ही पंक्ति।

(२) **निवास**—सब देशों में, मनुष्यों के साथ, पालतू जीव।

(३) **भोजन**—घास, पत्तियाँ, भूसा, अनाज और खली भी।

(४) **स्वभाव**—बहुत सीधा, बच्चों पर प्यार।

(५) **बच्चे**—१०—१२ तक, साधारणतः तीसरे वर्ष।

(६) **लाभ**—दूध, दही, गोबर, बच्चे, खाल, हाड़, मांस, देवता रूप।

गाय एक जीव है जिसके चार पैर होते हैं; यह बच्चे देनेवाला और उनको दूध पिलानेवाला जानवर है। इसमें और घोड़ों-गदहों आदि कई चौपायों में यह भेद है कि इसके सींग होते हैं, चारों खुर फटे रहते हैं और दाँतों की केवल एक अर्थात् नीचेवाली पंक्ति होती है; परन्तु घोड़ों, गदहों और खच्चरों में ये बातें नहीं होतीं।

गाय सब देशों में पाई जाती है और जल-वायु के अनु-सार छोटी, बड़ी, दुधारी और सूखी होती है। बहुधा यह पालतू होती है और मनुष्यों ही के बीच रहती है।

इसका मुख्य भोजन घास, पत्तियाँ और भूसा आदि हैं, इसलिए इसके पालने में अधिक ख़र्चा नहीं होता। दयालु लोग और विशेषतः दूध के लोभी इसे अनाज, खली, महुवा और नमक भी खिलाते हैं।

गाय का स्वभाव बहुत सीधा होता है; चरने के लिए छोड़ देने पर सन्ध्या-समय फिर अपने स्थान पर आ जाती है। इसके देखने ही से एक प्रकार का प्रेम सा उपजता है और इसकी सिधाई को देखकर सीधे आदमी को भी 'गौ आदमी' कहते हैं। परन्तु इसके सामने कोई इसके बच्चे को दुःख देता है तो यह क्रोधित होकर मारने के लिए दौड़ती है।

गाय प्रायः तीसरे वर्ष बच्चा देती है और अगर ठीक समय पर बच्चा जनती जावे तो दस-बारह बच्चे तक दे सकती है।

इससे मनुष्य को बहुत बड़े बड़े लाभ हैं। इसका दूध पीते हैं और इससे दही, मक्खन, घी, छाछ, मिठाइयाँ आदि भी बनाते हैं। इसके गोबर से मकान लीपते हैं और सुखाकर ईंधन भी बनाते हैं या उसे खाद के काम में लाते हैं। इसके बच्चों अर्थात् बैलों को गाड़ी और हल में जोतते हैं जिससे खेती का इतना भारी काम निकलता है। इसकी खाल से जूते, पुर

(कुएँ से पानी खींचने के लिए बड़े थैले) और बहुत सी चीज़ें बनाते हैं। इसकी हड्डियां खेत में पड़कर पृथ्वी को बहुत उपजाऊ कर देती हैं। बहुत जातियों के लोग इसका मांस भी खाते हैं, परन्तु हिन्दू लोग इसे देवता की तरह पूजते हैं और सवेरे उठकर दर्शन करते हैं। इन सब लाभों को देखकर जहाँ तक हो सके ऐसे उपकारी जीव की वृद्धि करनी चाहिए।

(२) रेलवे स्टेशन

(१) **प्लैटफ़ार्म**—लम्बा-चौड़ा, बहुत प्रकार के आदमियों से पूर्ण।

(२) **इमारत**—एक पंक्ति में बहुत से कमरे, उनका विभाग, बाहरी दीवारों के इश्तिहार।

(३) **ट्रेन आने का समय**—उत्सुकता, चढ़ने-उतरने की घबराहट, सौदा बेचनेवालों की पुकार।

(४) **ट्रेन का खुलना**—मित्रों से विदाई; लोगों का चला जाना।

वाह, रेलवे स्टेशन भी क्या अच्छा स्थान है जहाँ सैकड़ों चीज़ें दिखाई देती हैं। फाटक में घुसते ही अनोखे दृश्य मिलते हैं। दूर तक लम्बा चौड़ा प्लैटफ़ार्म फैला हुआ है जिसके एक सिरे पर खड़ा हुआ आदमी दूसरे सिरे पर से नहीं पहचाना जा सकता। इसका बहुत सा भाग टीन से छाया

हुआ है। यह बहुत भारी होने पर भी भयानक नहीं लगता, क्योंकि स्थान स्थान पर लोग बेन्चों पर बैठे हुए बातें कर रहे हैं। पत्थर व ईंट के फ़र्श पर लोग कम्बल और दरी बिछाये जमे हैं; कोई कोई हाथ पर सिर रक्खे लेटे भी हैं; बहुत से टहल रहे हैं। कुली लोग असबाब तोलते हैं। बहुत से बाहर लाते हैं; बाहर से भीतर ले जाते हैं; पानी पाँड़े डोल को कड़े से खटखटाते इधर से उधर चक्कर काटते हैं। रेलवे पुलिस के कान्स्टेबिल अपनी अपनी जगहों पर खड़े हैं। एक दो साहेब लोग मेम साहबों से बातें करते घूमते हैं, कोई सिग-रट पी रहे हैं। देशी स्त्रियाँ पर्दे के लिए घूँघट काढ़े आद-मियों की ओर पीठ किये चुपचाप बैठी हैं। छोटे छोटे बच्चे बीच बीच में रो उठते हैं।

अब इमारत पर निगाह डालिए। एक ही पंक्ति में बहुत से कमरे बने हुए हैं—किसी में स्टेशन-मास्टर का दफ़्तर है, किसी में तार-घर है, जहाँ से घंटो की टुनटुनाहट और तार की खटखटाहट आती है; किसी में टिकट घर है जिसकी खिड़की के सामने एक भारी भीड़ है और भीतर से रुपया परखने तथा टिकट में तारीख़ छापने का शब्द आ रहा है; किसी कमरे में बाबू लोग असबाब की बिल्टी करते हैं, सामने तौल करने की कल लगी है, किसी में पहले दर्जे के, किसी में दूसरे दर्जे के मुसाफ़िर विश्राम कर रहे हैं। बाहर दीवारों में नाना विधि के रङ्गीन और सादे काग़ज़ चपके हैं, कहीं

'लिप्टन की चाय', कहीं हाथ से अस्पृष्ट 'म्यलिन का भोजन', कहीं 'पियर का साबुन', कहीं घड़ी, कहीं रेलों के टाइम-टेबुल (समय-सूचियां), कहीं लालटेनें और कहीं 'साइन-बोर्ड' लगे हैं। देखने से प्रतीत होता है कि कोई जगह ख़ाली नहीं छोड़ी गई।

रेल आने का समय निकट आ गया है, लोग बराबर घड़ियां देख रहे हैं, अपठित लोग दूसरों से समय पूछ रहे हैं। ज्योंही रेल आने की घंटी हुई लोग उठ उठकर ताकने लगे। वह धुआं दिखलाई दिया, इञ्जिन दृष्टि में पड़ा, घड़-घड़ाहट बढ़ गई और ट्रेन प्लैटफ़ार्म पर पहुँच गई। अपनी अपनी गठरियां स्वयं लिये या कुलियों पर लदाये अपने अपने दर्जे की गाड़ियां ढूँढ़ते लोग कभी आगे आते हैं, कभी पीछे दौड़ते हैं, उतरनेवाले मुसाफ़िर प्लैटफ़ार्म पर अपना असबाब जांच रहे हैं और कुलियों से भाड़े का तोड़ कर रहे हैं।

थोड़ी देर में सब कलकल शब्द शान्त हो गया तो दूसरे प्रकार के शब्द कान में आने लगे। 'गरम गरम चाय', 'सोडा लेमोनेड', 'नागपुरी संतरे', 'पान गिलौड़ी', 'तम्बाकू ख़ुशबूदार', 'पूरी मिठाई,' 'कबाब रोटियां', 'खिलौने चाहिए' आदि विचित्र पुकारें बाहर से आती हैं। और 'क्यों बाबू साहेब', 'आप कहां जायँगे', आदि प्रश्न भीतर हो रहे हैं। कुछ देर में रेल छूटने की घंटी हुई; गार्ड ने हरी झंडी दिखाई और सीटी बजाई, इञ्जिन ने भी ज़ोर की सीटी दी और ट्रेन धीरे से चली।

बस समय हो गया, बाबू लोग अपने लौट जानेवाले साथियों से 'गुड बाई' करने लगे और खिड़कियों के बाहर निकालकर हाथ मिलाने लगे। कोई लोग 'नमस्कार' कहते हैं; कोई 'राम-राम'; कोई 'तसलीमात अरज़'; कोई 'भाई पहुँचते ही चिट्ठी लिखना' आदि। अब ट्रेन निकल गई और बाहरी लोग अपने अपने घर को चले गये; स्टेशन के कर्मचारी लोग भी अपने अपने स्थान को सिधारे और कुछ देर के लिए भीड़ हट गई।

(३) प्रयाग नगर

प्रयाग या इलाहाबाद नगर संयुक्तप्रदेश के मध्य में गङ्गा नदी के दक्षिण तट और यमुना नदी के वाम तट पर बसा है। प्रान्त भर में सबसे बड़ा शहर न होने पर भी यह अत्यन्त रमणीक और प्रसिद्ध नगर है। इसके कई खंड (दारागंज, कटरा आदि) अलग अलग बसे हैं जिससे अत्यन्त स्वच्छता रहती है और महामारी आदि उपसर्गों का भयानक कोप नहीं होता। इसमें चौड़ी पक्की सड़कों की संख्या बहुत है और दिन दिन बढ़ती जाती है। समग्र नगर में यमुना का जल नलों के द्वारा पहुँचाया जाता है; यहाँ का प्रबन्ध म्यूनीसिपलिटी के हाथ में है।

यह एक ऐतिहासिक स्थान है; महाराज पुरूरवस् के किले के खँडहर अब भी गंगा के दूसरे तट पर भूसी में हैं। प्रयाग बहुत समय तक हिन्दू राजाओं के अधिकार में था, फिर मुस-

मुसलमानों के हाथ आया। मुगल-बादशाह अकबर ने गंगा और यमुना के संगम पर एक बहुत बड़ा किला बनवाया था जिसमें आज-कल अँगरेज़ी सेना रहती है। अँगरेज़ों ने इस नगर की बड़ी वृद्धि की है।

यह नगर संयुक्तप्रान्त की राजधानी है, अर्थात् इस प्रान्त के प्रधान शासक, गवर्नर या छोटे लाट साहेब का नियत निवासस्थान यहाँ है। उनका मुख्य आवास, गवर्नम्यंटहाउस, मुख्य शहर के ईशान कोण में है। माल, दीवानी, फ़ौजदारी, पुलिस, शिक्षा, आदि महकमों के केन्द्र यहाँ पर हैं, अर्थात् उन सबके प्रधान अफ़सर यहीं रहते हैं। हाईकोर्ट अर्थात् प्रधान न्यायालय, यूनीवर्सिटी अर्थात् विश्वविद्यालय आदि के कारण इस पुर की अनुपम शोभा रहती है। यहाँ के कालेजों, स्कूलों और पाठशालाओं में बाहर से आकर लड़के विद्या पढ़ते हैं; और उनके रहने के निमित्त उत्तम छात्रालय, बोर्डिङ्गहाउस, बने हुए हैं। यहाँ पर हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ी सेना भी रहती है।

प्रयाग की उन्नति तीर्थस्थान होने के कारण और भी अधिक है; गंगा, यमुना और सरस्वती (जो अदृश्य है) का संगम त्रिवेणी के नाम से कहा जाता है; भरद्वाजजी का आश्रम, वेणीमाधवजी का स्थान, किले के भीतर अक्षयवट और बहुत से पुण्यस्थान यहाँ पर हैं। यहाँ तक कि हिन्दू लोग प्रयाग को तीर्थराज कहते हैं। माघ के महीने में संगम

पर भारतवर्ष के मुख्य मेलों में से एक मेला होता है जिसमें देश के प्रत्येक भाग से यात्री लोग आते हैं। यह मेला एक मास तक रहता है।

यहाँ व्यापार के सभी सुभीते हैं, नदियों में नौकाओं के द्वारा, और स्थल पर रेल के द्वारा माल आता-जाता है। ईस्ट इण्डियन रेलवे और बङ्गाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे के बड़े बड़े स्टेशन यहाँ पर हैं। सहस्रों भले मनुष्यों के रहने से वस्तुओं का बड़ा व्यय होता है, और इर्द-गिर्द की पृथ्वी में खाने-पीने की प्रायः सब वस्तुओं के उत्पन्न होने पर भी बाहर से मँगाने की आवश्यकता पड़ती है। देशी व्यापारी शहर के भीतर रहते हैं, परन्तु अँगरेज़ी सौदागरों की दूकानें बाहर खुले में हैं।

यहाँ का जल-वायु उत्तम है, इसी से लोग प्रायः स्वस्थ होते हैं। यहाँ पर हिन्दुओं और मुसलमानों की बस्ती है, और अँगरेज़ भी अन्य नगरों से अधिक रहते हैं, जिनके कई गिर्जाघर और सैकड़ों बँगले इस पुर को विचित्र सौन्दर्य देते हैं।

इस नगर की दर्शनीय वस्तुओं में पूर्वोक्त हाईकोर्ट, यूनीवर्सिटी, जेल, कालेज और बहुत सी अँगरेज़ी तथा देशी कोठियों के अतिरिक्त अल्फ़ेड पार्क और खुसरो पार्क आदि उत्तम उद्यान हैं। इसी नगर में सन् १९१०-११ में लाखों रुपयों के व्यय से एक बहुत बड़ी और आश्चर्यजनक प्रदर्शिनी हुई थी।

निदान राज-सम्बन्धी, विद्या-सम्बन्धी, धर्म-सम्बन्धी और

ब्याह किया; और अयोध्या को लौटते समय मार्ग में परशु-राम का मान-मर्दन किया।

कुछ समय में दशरथ महाराज ने इनको युवराज बनाना चाहा, पर इनकी सौतेली माता कैकेयी ने रङ्ग में भङ्ग कर दिया--रामजी सीता व लक्ष्मण को साथ लेकर वन सिधारे और यौवराज्य कैकेयी के पुत्र भरत के लिए खाली रक्खा गया। इसी शोच में राजा दशरथ ने प्राणों का परित्याग कर दिया।

भरत ने अपने नाना के यहाँ से आकर यौवराज्य स्वीकार न किया, और अपनी माता को इस अनिष्ट क्रिया पर धिक्कार करके राम को बुला लाने का उद्योग किया। परन्तु दृढ़व्रत राम पिता के आज्ञानुसार चौदह वर्ष तक वन नहीं छोड़ सकते थे। निदान उनके लौटने तक अयोध्या में चलतू प्रबन्ध कर दिया गया।

वन में रामजी का पहला निवास चित्रकूट था; पर अयोध्या से निकट होने के कारण यहाँ कुछ विघ्न होता था। दूसरा निवास नासिक में पञ्चवटी में हुआ। यहाँ लङ्का के राक्षस राजा रावण की बहन शूर्पणखा ने सीता पर आक्रमण किया, तब लक्ष्मण ने उसे नाक और कान से हीन कर दिया। इस वृत्तान्त को सुनकर खर-दूषण आदि चौदह सहस्र राक्षसों ने राम पर चढ़ाई की, पर वीरवर राम ने सबको नष्ट कर दिया।

अब शूर्पणखा रोती हुई रावण के पास गई जिसने राम से पूर्ण विरोध उत्पन्न किया। छल से मारीच के द्वारा राम व

लक्ष्मण को अलग ले जाकर रावण ने सीता को हरकर अपने राज्य में कर दिया। अब तो परम दुःखाकुल होकर राम ने सुग्रीव नामक वानरपति से मित्रता की और उसके भाई बालि को मारकर उसे किष्किन्धा के राज्य पर स्थापित कर दिया।

सुग्रीव के उद्योग से हनुमान् ने जाकर लङ्का फूँक दी और सीताजी की प्रवृत्ति राम को सुनाई। ख़बर पाते ही असंख्य वानरों व भालुओं की सेना ने समुद्र में पुल बाँध लङ्का पर आक्रमण कर लिया। बड़े बड़े घोर युद्ध हुए जिनमें रावण के बड़े बड़े योद्धा मारे गये। अन्त में राम ने रावण के वंश का संहार करके लङ्का का राज्य उसके भाई विभीषण को दिया जो पहले ही से इनका मित्र हो गया था।

इस अद्भुत विजय को पाकर और अग्नि को सीता की शुद्धि का साक्षी करके रामजी अपनी पुरी अयोध्या को पधारे, जहाँ उन्होंने चिरकाल अत्यन्त नीति व नम्रता से राज्य किया।

राम में सम्पूर्ण उत्तम गुण—विद्या, विनय, शील, दया, उपकार, कृतज्ञता, नीति, धैर्य, दृढ़व्रतता, सत्य आदि—थे, यहाँ तक कि हम हिन्दू लोग उन्हें आदर्शरूप पुरुष, मर्यादापुरुषोत्तम और विष्णु का अवतार मानते हैं।

(६) गोस्वामी तुलसीदासजी

(१) **जन्म**—बाँदा ज़िले के राजापुर ग्राम में, सं० १५८९ वि० मूल में जन्म, माता पिता से त्याग। साधु नृसिंहदास सोरों ले गये।

(२) **गृहस्थाश्रम**—बड़े होने पर विवाह आदि गृहस्थ-धर्म। स्त्री के उपदेश से विराग।

(३) **साधुवृत्ति**—काशी को आना। प्रेत के द्वारा हनुमान्‌जी के दर्शन, चित्रकूट जाना, श्रीराम-दर्शन। अयोध्या जाना, वैरागियों से झगड़ा, फिर काशी को लौटना।

(४) **अन्त**—९१ वर्ष की अवस्था में संवत् १६८०, काशीपुरी में।

(५) **भक्ति और पांडित्य**—श्रीराम के पूरे भक्त, हिन्दी-भाषा के प्रथम श्रेणी के कवि, सब शास्त्रों में प्रवृत्ति, चतुरता, दृढ़ विचार।

(६) **ग्रन्थ**—बहुत से छोटे बड़े; जिनमें 'रामचरित-मानस', 'विनयपत्रिका', 'कवित्त रामायण' आदि बहुत विख्यात हैं।

(७) **समय**—मुसलमानों का राज्य, हिन्दुओं की चीणता, धर्म-मतों में विरोध। गोसाईं जी ने सब मतों को मिलाकर भक्ति-पक्ष प्रधान रक्खा।

(ग) विज्ञान-प्रबन्ध।

(७) वर्षा

'सोइ जल अनल अनिल संघाता।
होय जलद जग जीवन दाता॥'

अर्थात् 'अग्नि और पवन के संयोग से वही जल बादल

होकर फिर बरसता है, जिससे संसार के जीव जीते हैं' यह तुलसीदासजी का वचन है; अब हम इसी का विवरण लिखते हैं।

समुद्र और नदियों में सहस्रों कोस तक पानी फैला रहता है और जब इस पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तब उनकी गर्मी से पानी भाप के रूप में बदलकर ऊपर चलता है। हम देखते हैं कि अगर पानी आग पर गर्म किया जाता है तो उससे भाप निकलती है, यह भाप पानी ही का दूसरा रूप है; इसके बारे में विज्ञानवाले कहते हैं कि गर्मी से सब चीज़ें फैलती हैं, इसलिए पानी के छोटे छोटे कण फैलकर भाप बन जाते हैं। हमको यह भी ज्ञात है कि हल्की वस्तु सदा भारी वस्तु के ऊपर रहती है, [जैसे तेल और पानी मिलाकर रख दो तो तेल ऊपर ही रहेगा, क्योंकि पानी से हल्का होता है] इसी लिए यह भाप पानी से निकलकर हवा में मिल जाती है।

• अगर हम इसका प्रमाण देखना चाहें तो गर्म पानी से निकलती हुई भाप के सामने कोई सूखा बरतन कर दें, क्षण-मात्र में पानी के हज़ारों छोटे छोटे बिन्दु बरतन पर जम जावेंगे, और थोड़ी देर रखने पर बह निकलेंगे।

यह भाप हवा के साथ सैकड़ों हज़ारों कोस तक चली जाती है और ठंढक पाकर जमने लगती है, तभी बादल रूप से दिखाई देती है। अधिक सर्दी से वही भाप फिर अपने

रूप में नहीं रह सकती किन्तु पानी के छोटे छोटे कण बन जाते हैं जो इकट्ठे होकर बूँद बूँद करके बरसते हैं।

भारतवर्ष में 'मानसुन' वायु के कारण पूर्व समुद्र की भाप बंगाल की ओर से पञ्जाब तक चली जाती है; पर अत्यन्त ऊँचे हिमालय के कारण उसके दूसरी ओर नहीं जा सकती; इसी का कुछ भाग मध्य-देश व मदरास की ओर भी चला जाता है। पश्चिम समुद्र की भाप 'कोकन' व गुजरात आदि देशों में जाती है जहाँ पर्वतों से रुककर बरसती है, चूँकि राजपूताना के बड़े भाग में इस भाप का रोकनेवाला कोई पर्वत नहीं, इसलिए वहाँ वर्षा नहीं होती।

वर्षा ही से सब पेड़ पौधे घास फूस हरे और जीवित रहते हैं; इसी से जीवधारी अपना अपना भोजन पा जाते हैं। कृषि करनेवाले देशों में एक ही साल की अनावृष्टि से सत्यानाश हो जाता है, क्योंकि अनाज पैदा नहीं होता तो लोग क्या खाकर जियें। इस महालाभ के अतिरिक्त वर्षा से हमारे चित्त प्रफुल्लित रहते हैं और उष्णता की कमी हो जाने से स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है।

(८) भोजन का परिपाक

प्राय: लोग अन्न न पचने और उदर-पीड़ा आदि की शिकायत किया करते हैं, पर उनको यह नहीं ज्ञात होता कि ये दुःख क्यों होते हैं। यदि वे भोजन-परिपाक की संक्षेप

रीति जानें तो आशा है कि उसके अनुकूल काम करने पर उनकी व्यथा दूर हो जावे।

भोजन पहले दाढ़ों और दाँतों से महीन होकर और मुख के रस, लार, या थूक से मिलकर एक नली के द्वारा भीतर जाता है। भोजन का महीन होना आवश्यक है क्योंकि बड़े टुकड़ों के चले जाने से भीतरी कल को बड़ा श्रम करना पड़ता है। थूक का मिलना और भी आवश्यक है क्योंकि यह उसे गला कर पचने योग्य कर देता है। जल्दी खाने से यह दोनों काम अधूरे रह जाते हैं; इसलिए पचने में देर होती है।

जो नली इस भोजन को भीतर ले जाती है उसमें गले के स्थान पर अन्य कई द्वार रहते हैं जो कि निगलते समय बन्द हो जाते हैं। हँसी से फेफड़ोंवाला द्वार खुल जाता है तब भोजन का कुछ भाग वहाँ जाकर दुःख देता है; वायु भीतर से उसे ढकेलकर अपने मार्ग में लाना चाहती है, इसी से खाँसी और बेचैनी होती है।

भोजन नली के द्वारा आमाशय या म्यादे को जाता है जो एक प्रकार की थैली है और जिससे एक तरह का रस छूटकर भोजन को पतला कर देता है। तब इस थैली के दूसरे सिरे पर से निकलकर भोजन एक बारह इञ्ची नली में जाता है जहाँ पर दो प्रकार के रस उसमें मिलते हैं अर्थात् कफाशय से कफ और पित्ताशय (कलेजे के एक भाग) से

पित्त। अगर खाने में शूक का योग्य भाग नहीं मिला तो कफाशय को उसकी कमी पूरी करनी पड़ती है जिससे वह निर्बल हो जाता है।

इन दोनों रसों से मिलकर भोजन का पतला द्रव छोटी आँतों में जाता है जो रस्सी की तरह फन्दों में लपेटी हुई एक दूसरी पर पड़ी रहती हैं। आँतों की चाल कई एक कीड़ों की तरह होती है जिससे भोजन बराबर आगे बढ़ता चला जाता है। इन्हीं आँतों में कुछ बारीक रोएँ से होते हैं जो भोजन के सत्व को खींचकर दूसरे मार्गों से रक्त में मिला देते हैं। बचा हुआ भाग छोटी आँतों से निकल बड़ी आँत में जाता है जो अधिक चौड़ी होती है और छोटी आँतों को चारों ओर से घेरे रहती है। अगर भोजन का कोई लाभकारक भाग बच गया है तो वह बड़ी आँत में खिंच जाता है और कूड़ा आँत के बाहरी सिरे के पास इकट्ठा हो जाता है। समय पर मांस के पट्ठे इसे दबाकर बाहर निकाल देते हैं।

अधिक खाने से या कच्चा व कठोर खाने से, या बिना आदत के देर में पचनेवाली वस्तुओं के खाने से पचानेवाली कल को बहुत मिहनत पड़ती है जिससे पेट में पीड़ा होती है और पाचन-शक्ति कम पड़ जाती है।

यहाँ पर यह भी बतला देना ठीक है कि शरीर के पालन के लिए पूरा सामान भोजन ही से मिलता है। भोजन के

पचने में जितनी कमी होगी उतना ही कम रस शरीर को मिलेगा, और दुर्बलता बढ़ती जावेगी। सुस्त लोगों की पाचन-शक्ति घट जाती है, इसलिए भोजन का निकास आँतों से बहुत देर में होता है; इसे बद्धकोष्ठ या क़ब्ज़ कहते हैं, और यह बहुत से रोगों की जड़ है।

मनुष्यों को चाहिए कि अपने बल के अनुसार, नियत समय पर, पचने के योग्य भोजन करें और चलने-फिरने व व्यायाम से इस बड़ी कल को ठीक रक्खें।

(९) रोशनी के उपाय

(क) **प्राकृतिक**—सूर्य की रोशनी, सबसे बड़ी व उत्तम; चन्द्रमा व तारों की रोशनी मन्द। इनका हर समय न मिलना, इसी से और उपायों की आवश्यकता।

(ख) **कृत्रिम**—(१) **मशाल**—बरगद की बरोही या पुराने कपड़ों की, तेल ऊपर से डालना, कठिनाई।

(२) **मोमबत्ती**—चर्बी का धीरे धीरे आँच से गलना।

(३) **दीपक या लैम्प**—बरतन से तेल का बत्ती के द्वारा खिंचना; मिट्टी का तेल सदा बन्द बरतन में, क्यों? काँच की चिमनी; उसके लाभ।

(४) **गैस**—कोयले या तेल से बनना, नलियों के द्वारा जलना, सबको न मिल सकना।

(५) **बिजली**—सबसे तेज़, बिजलीघर से तारों के द्वारा आना, केवल बड़े शहरों में होना।

(१०) प्लेग

(१) **साधारण**—एक रोग, लक्षण (ज्वर, गिल्टी आदि)।

(२) **हानि**—बड़ी मृत्यु-संख्या, घरों का बिगड़ जाना, किसी का पास न आना।

(३) **फैलाव**—पिस्सू व चूहों के द्वारा—बीमार चूहों व मनुष्यों का रक्त पिस्सू चूसते हैं, यही पिस्सू नीरोग चूहों को काटकर उनमें रोग फैलाते हैं, यह चूहे दूसरे मकानों को भाग जाते हैं जहाँ और पिस्सू इनका रोगी रक्त चूसकर मनुष्यों को काटते हैं तब मनुष्य रोगी हो जाते हैं।

(४) **प्रारम्भ**—बम्बई से, पहले इसके रोकने के लिए सरकार की ओर से उपाय, रोगियों की जाँच व रोक, छोटे कर्मचारियों की बेईमानी, लोगों की घबराहट, लाचार होकर उपायों का त्याग।

(५) **उपाय**—दवा, सफ़ाई, जन्तु-विषनाशक दवाओं से मकान पुताना, घर छोड़ बाहर झोपड़ों में रहना, बीमारों से लगाव छोड़ना, टीका लगवाना।

(घ) तर्क-प्रबन्ध।

(११) उपन्यासों (नाविलों) का पढ़ना लाभदायक है या हानिकारक है ?

जब कोई नई पुस्तक लिखी जाती है तब हम प्रायः यह देखते हैं कि उसमें कोई नवीनता है या केवल पुरानी प्रचलित

बातें ही उठाकर रख दी गई हैं। यदि नवीनता है तो किस प्रकार स्थापित की गई है, कौन कौन से विचार किस क्रम से रक्खे गये हैं और किस प्रकार दृढ़ किये गये हैं। इन बातों के साथ साथ पुस्तक की रचना और भाषा भी देखी जाती है, अर्थात् शब्दों व वाक्यों के मुहाविरे, बल और सम्बन्ध आदि सभी पर दृष्टि डाली जाती है।

यदि किसी उपन्यास में पूर्वोक्त सब बातें अच्छी पाई जावें तो उसके पढ़ने में क्या हानि है? हम जानते हैं कि नाना भाँति की पुस्तकों, नाटक, काव्य, इतिहास, जीवन-चरित्र, यात्रा-वर्णन आदि के साथ उपन्यासों की भी गणना की जाती है; और जब शिक्षित मनुष्य के लिए अन्य प्रकार के ग्रन्थों का पढ़ना आवश्यक है तो उपन्यासों की कमी क्यों रक्खी जावे? यही नहीं, प्रत्युत उपन्यासों के न पढ़ने से एक विशेष प्रकार की शिक्षा नहीं होती और यह शिक्षा किसी दूसरे प्रकार से नहीं दी जा सकती।

विज्ञान की अमूल्य बातें सूखी रूखी पढ़ने में बहुतों को अरुचि करती हैं, पर जब यह उपन्यास में मनुष्यों के साधारण कामों के साथ लगा दी जाती हैं तब बड़ी सुगमता से बुद्धि में आ जाती हैं। इसके अलावा उपन्यासों में अपने समय के आदमियों, उनके ढङ्गों, उनकी आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक दशाओं का चित्र खींचा रहता है जिसके देखने ही से सब भलाइयां व बुराइयां प्रकट हो जाती हैं। अच्छे व बुरे लोगों

का नमूना आँख के सामने आ जाता है जिससे अपने चरित्र की शुद्धि हो सकती है।

गूढ़ विचारों से भरे हुए कठिन ग्रन्थों का पढ़ना बहुत समय तक नहीं हो सकता, इस कारण थकावट मिटाने व विषय बदलने के लिए उपन्यासों की आवश्यकता पड़ती है।

उपन्यास पढ़ने के प्रतिकूल भी कई बातें कही जाती हैं—इससे स्वयं विचार करने की शक्ति जाती रहती है। ऐसे ग्रन्थों में जो बातें दी रहती हैं उनको पढ़कर समझ लेने ही का काम है, अपने विचार करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। इन ग्रन्थों के अधिक पढ़ने से फिर गूढ़ विचारवाले ग्रन्थों में जी नहीं लगता और सदा हल्के ग्रन्थ पढ़ने की धुन सवार रहती है।

बहुत से उपन्यासों को एक बार छपकर दुबारा छपने की नौबत नहीं आती; इससे स्पष्ट है कि उनमें कोई सार नहीं होता।

कुछ उपन्यासों में काम-कला की अनुचित बातें, कामियों के अनुचित उपाय और नीच पात्रों की लज्जा-दायक बातें होती हैं जिनके पढ़ने से पाठकों पर वैसा ही रङ्ग चढ़ जाने का भय रहता है। विशेषतः लड़कों के कच्चे हृदयों पर उनका अत्यन्त हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

इन लाभों और हानियों को देखकर पूर्णतया यह निर्णय करना कठिन है कि उपन्यास पढ़ने चाहिएँ या नहीं। केवल इतना कहा जा सकता है कि अच्छे चरित्र के दिखानेवाले

और वस्तुतः कोई अच्छी बात सिखानेवाले उपन्यास लाभकारी होते हैं; इनके अन्यत् नीच कर्मवाले और अश्लील बर्ताववाले ग्रन्थों से घृणा ही उचित है।

(१२) कौन सा बड़ा आविष्कार है—लिखना या छापना

लिखना—(१) छापने के पहले निकला; हर देश में पहले हाथ से अक्षर खींचे गये, तब दूसरी विधियाँ निकलीं।

(२) सब बड़ी बड़ी पुस्तकें आदि पहले लेख में होती हैं तब छापे में उतारी जाती हैं।

(३) लिखना हर स्थान और हर समय पर हो सकता है; कोई विचार आते ही समय लिख लिया जावे तो बना रहता है, नहीं तो भूल जाता है, छापा ऐसी जगहों पर काम नहीं देता।

छापना—(१) एक ही बार में जितनी प्रतियाँ चाहो तैयार कर लो।

(२) इससे पुस्तकें सस्ती मिलती हैं और अधिक लोग पढ़ सकते हैं। विद्या की वृद्धि होती है। गुप्त पुस्तक-रत्न आज-कल हर हाथ में दिखलाई देते हैं।

(३) इससे बड़ी शुद्धि रहती है। लिखी हुई पुस्तकों में बड़ा भ्रम रहता है।

फल—लिखने के बिना काम ही न चलेगा और छापने के बिना विद्या की वृद्धि नहीं होगी। एक के बन्द होने से सब काम रुकेगा, दूसरे के बन्द होने से बहुत सा रुकेगा। इसी से लिखना बड़ा आविष्कार है।

१३—मांस खाना उचित है या अनुचित ?

उचित—(१) बहुत देशों के निवासी खाते हैं।
(२) सभ्यता न फैलने के पहले सब मनुष्य खाते थे।
(३) कुक्कुर दाँत अर्थात् बीच से तीसरे नम्बर-वाले दाँत दिखलाते हैं कि मनुष्य मांसाहारी जीव है।
(४) इसमें बलवर्द्धक शक्ति अधिक होती है।
(५) स्वाद-युक्त भोजन है।

अनुचित—(१) हिन्दू-शास्त्रों में निषेध, जीवों पर दया।
(२) शरीर-पालन की आवश्यक वस्तुएँ पौधों में मिलती हैं।
(३) रोगी जीव का मांस खानेवाले रोगी हो जाते हैं।
(४) काम-क्रोधादि तामसी गुण बढ़ते हैं; क्षमा-शक्ति घट जाती है।

निर्णय—दोनों की तुलना करके अपने विचार के अनुसार।

(ङ) उद्धरण प्रबन्ध

(१४) "अपनी करनी पार उतरनी"

यह कहावत हमको सिखलाती है कि अगर किसी काम में सिद्धि चाहते हो तो स्वयं उसका उद्योग करो, दूसरों के भरोसे न रहो। यह संसार अपने मतलब का है, हर आदमी को जितनी चिन्ता अपने निज के काम के लिए होती है उतनी दूसरे के लिए नहीं होती। फिर जब तुम्हारा काम है और तुम निश्चिन्त होकर बैठे हो तो दूसरों को क्या परवाह है कि आकर उसे पूरा करें।

इससे यह आशय नहीं है कि जगत् में लोग एक दूसरे की सहायता नहीं करते। लोग तुम्हारी सहायता करेंगे, परन्तु कब? जब तुम स्वयं उसमें दत्तचित्त रहोगे। दूसरों की सहायता सहारा-मात्र के लिए होती है, परन्तु पूरा काम अपने ही किये से होता है। बचपन में माँ-बाप पालन-पोषण करते हैं, पर वे सदा नहीं बने रहते; किसी दिन बोझ सिर पर अवश्य ही पड़ता है। इस बोझ के सँभालने के लिए तैयारी की आवश्यकता है। अगर तमाम दिन खेल-कूद में गँवाये हैं, विद्या नहीं पढ़ी, उद्यम नहीं सीखा, रङ्ग-ढङ्ग नहीं देखे, तो वह बोझ सिर तोड़ देगा। परन्तु इससे विपरीत अगर काम करने का स्वभाव डाला है, कठिनाइयों के दूर करने के उपाय सीखे हैं और अपने बाहु-बल पर विश्वास है तो इतना बोझ क्या इससे दूना भी सुगमता से उठा लोगे।

विलायत के 'डारविन' नामक एक विज्ञानी ने लिखा है कि जीवन-निर्वाह के लिए दुनिया में बड़ी खींच-खाँच रहती है अर्थात् अपने निर्वाह के लिए दूसरों का विचार छोड़ देना पड़ता है। यह बात छोटे जीवधारियों में अधिक पाई जाती है। बिल्ली को चूहों पर करुणा नहीं होती, इसलिए वे अगर अपना जीवन चाहते हैं तो देख-भालकर बिल से निकलें। मनुष्य में यह स्वार्थपरता किसी समय में अधिक थी, परन्तु अब सभ्यता के बढ़ जाने से उसमें कुछ कमी हुई है। तथापि थोड़े धन के लिए नीच लोग मनुष्य-वध तक का साहस कर बैठते हैं; एक ही स्थान प्राप्त करने के अभिलाषी अपना ही स्वार्थ देखकर दूसरों को उससे वंचित करना चाहते हैं। इसलिए मनुष्य में अपने को दूसरों से बचाने की शक्ति और कार्य-सिद्धि के उपाय आवश्यक हैं।

इसी दी हुई कहावत में संसार की तुलना एक बड़ी नदी या समुद्र से की गई है जिसका पार उतरना ज़रूरी है। जिन लोगों में तैरने की शक्ति, या घड़े आदि बाँधकर, नाव तैयार करके पार जाने की शक्ति है वे तो अपने अपने उद्योग के अनुसार उतर जाते हैं। पर जो इधर-उधर मुँह ताकते हैं वे बीच धार में उन्मज्जित निमज्जित हुआ करते हैं।

सबका फल यह है कि मनुष्य को अपने निर्वाह के लिए स्वयं दृढ़ता के साथ प्रयत्न करना चाहिए। पाठशाला की थोड़ी सी अधिक मिहनत, युवावस्था का थोड़ा सा अधिक

आत्म-त्याग, दुःख के समय का थोड़ा सा अधिक धैर्य, और चरित्र की शुद्धि के लिए थोड़ी सी अधिक दृढ़ता—यह सब मनुष्य को उस महासागर के पार करने में जल-यान का काम देते हैं। फिर स्मरण कर लो कि अपनी ही करनी से पार उतर सकोगे।

(१५) "अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत"

अर्थ—किसान का पश्चात्ताप, आलस्य का फल।

भाव—अवसर चूक जाने से फिर काम नहीं बनता।

उदाहरण।

नियत समय—थोड़ा ही होता है, बार बार नहीं मिलता।

फल—जागृत रहना चाहिए; बालकों को विद्याभ्यास, बड़ों को धनोपार्जन, धर्म विषय आदि समय पर कर लेने चाहिएँ। चेतावनी पर काम करने से पछतावा नहीं होता।

(च) मानसिक प्रबन्ध

(१६) पुस्तकें

पुस्तकें विद्या फैलाने का मुख्य द्वार हैं, अर्थात् एक आदमी की विद्या, अनुभव और विचारों को दूसरों के हृदय तक पहुँचाने का काम पुस्तकें ही करती हैं। एक विज्ञानी पुरुष साइन्स में कोई नया आविष्कार करता है; एक कवि किसी उत्तम विचार

को योग्य शब्दों में प्रकट करता है; और ज्योंही वे पुस्तकों में लिखे गये, मनुष्य-मात्र के पास पहुँच गये। इस प्रकार एक की कमाई से सब लाभ उठाते हैं। पुराने समय की बातें पुस्तकों के ही द्वारा हमको ऐसी ज्ञात हैं मानों प्रत्यक्ष हो रही हैं।

मनुष्य की सृष्टि के बढ़ते ही बोलने के अतिरिक्त अन्य प्रकार से एक दूसरे पर अपने विचार प्रकाशित करने की आवश्यकता पड़ी, इसलिए अक्षरों के सङ्केत या चिह्न बनाये गये और लिखने की प्रथा चली। लोग अपनी आवश्यकताओं को लिखकर दूसरों के पास भेजने लगे। ज्यों ज्यों सभ्यता बढ़ती गई, विद्या का प्रचार और भी ज़रूरी होता गया और पुस्तकें बनती गईं।

परन्तु हर आदमी के लिए हर पुस्तक लिखना कठिन नहीं, वरन् असम्भवित था। किसी को कैसे मालूम हो कि अमुक विषय पर कोई पुस्तक है या नहीं, अगर है तो कहाँ मिलेगी, और मिलने पर भी उसके लिखने में कितनी कठिनता पड़ेगी। इसी लिए पुराने समय में विद्या का प्रचार अधिक हो ही नहीं सकता था। पर जब से छापे का आविष्कार हुआ तब से यह दुःख दूर हो गया। एक ही साथ जितनी प्रतियाँ चाहें छाप सकते हैं और रेल वा डाक के द्वारा पृथ्वी-मण्डल पर सर्वत्र पहुँचा सकते हैं।

वर्तमान समय में विषय इतने अधिक हैं कि उनकी गणना

ठीक-ठीक नहीं हो सकती, और इन विषयों पर जो पुस्तकें लिखी जाती हैं, वे भी उतने ही प्रकार की होती हैं। हम मानते हैं कि कोई पुरुष इस थोड़े से आयुर्बल में सब प्रकार की पुस्तकें नहीं पढ़ सकता, तथापि जितने प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जाती हैं उतना ही अनुभव बढ़ता है। कुछ विषय ऐसे हैं जिनका जानना आधुनिक सभ्यजनों के लिए आवश्यक है जैसे इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान या साइन्स आदि। जो मनुष्य कोरा एक ही विषय जानता है उसकी विद्या अधूरी रह जाती है और वह संसार को ठीक दृष्टि से नहीं देख सकता। परन्तु स्मरण रहे कि सब विषयों की कचाई इससे भी अधिक बुरी है। एक विद्वान् का उपदेश है कि किसी एक विषय का पूर्णतया जानना और अन्य को थोड़ा थोड़ा जानना अच्छा है।

पुस्तकों को चुनने में बड़ी बुद्धि का काम है। जैसे संसार में अच्छे और बुरे लोग हैं, वैसे ही अच्छी और बुरी पुस्तकें हैं। जैसे बुरे आदमियों के सङ्ग से चरित्र नष्ट हो जाता है और मनुष्य को घृणा होती है वैसे ही बुरी पुस्तकों से भी। थोड़ी पुस्तकें पढ़ो, पर ऐसी पढ़ो जिनसे विषय स्पष्ट और विचार शुद्ध हो जावे। एक एक अध्याय पढ़कर पुस्तक बन्द करके सोचो कि उस अध्याय का तत्त्व क्या है, इस तत्त्व को याद रक्खो। पुस्तक पढ़ने से तभी लाभ होगा जब तुम उस विषय को अपना बना लोगे।

(१७) विनय या नम्रता

"यथा नवहिं बुध विद्या पाये"

जब वृक्ष बहुत फूलता-फलता है तो उसकी शाखाएँ झुक-कर भूमि से बातें करने लगती हैं। जब बादल जल से पूर्ण और बरसने के समीप होता है तो नीचे उतर आता है। समुद्र में मोती नीचे बैठता है और तृण ऊपर उतराता है। इसी प्रकार विद्वान् गुणी और सज्जन लोग विनय से चलते हैं।

अच्छी चाल ढाल के लिए कितने ही एक नियम बनाये गए हैं; परन्तु उन सबमें एक सीधा सादा उपदेश पाया जाता है कि हर एक काम नर्मी से करो। जो काम आहिस्ता, शान्ति के साथ, मित्रता के भाव से किया जाता है उसका मूल्य द्विगुण हो जाता है। इसके विपरीत यदि कोई बात चिल्लाकर, हठ के साथ, साहस प्रकट करनेवाली कही जाती है तो उसका प्रभाव उल्टा पड़ता है; अर्थात् कहनेवाले की कठोरता और नीचता झलकने लगती है। जब कोई आदमी बात कर रहा है तो बीच में टोकना, उसकी बात को रद्द करना, ठट्ठा मारकर हँसना, दूसरों से आँख मारना, वा मुँह बनाना आदि प्रकट करते हैं कि तुम्हें नम्रता की अच्छी शिक्षा नहीं दी गई जिससे तुम अपने को सबसे उत्तम मान बैठे हो।

इस सामाजिक संसार में सब प्रकार के लोग हैं; किसी में एक गुण अधिक है, किसी में दूसरा; एक ही बात को कोई एक प्रकार से मानता है, कोई दूसरे प्रकार से। जो बात कोई

१४

आदमी एक तरह से मानता है उसमें वह इतना ही पक्का होता है जितना कि तुम अपनी राह पर हो। फिर यदि तुम उसकी बात नहीं सुनते और आग्रह करके अपनी ही बात का प्रतिपादन करते हो तो स्मरण रक्खो कि उसको तुम्हारी बात इतनी ही बुरी लगेगी जैसे तुम्हें उसकी बात। अगर तुम्हारी तरह उसे भी क्रोध आया तो सामाजिक दशा की वहीं से समाप्ति हो गई।

इस कथन से यह तात्पर्य नहीं कि किसी की झूठी बात पर हाँ में हाँ मिलाओ। अवश्य उसकी असत्य बात का खण्डन करो और सत्य बात का प्रतिपादन युक्ति के साथ करो, पर पहले उसकी बात का यथार्थ तत्त्व बूझ लो और उसकी पदवी पर विचार कर लो। अपने मुँह से अपना महत्त्व स्थापित करना मियाँ मिट्ठू बनना और अधमता प्रकट करना है।

बात-चीत में पदवी के अनुसार आप, महाशय, श्रीमान् आदि का प्रयोग करना चाहिए। भूल पड़ने पर क्षमा की प्रार्थना, कृपा करने पर 'आपकी अत्यन्त कृपा है', 'मैं अनुगृहीत हुआ' आदि कृतज्ञता-सूचक वाक्य कहने चाहिएँ। यह न सोचना चाहिए कि ऐसे वाक्य केवल दिखाव के लिए हैं और ख़ुशामद ज़ाहिर करते हैं।

ऊपर के वर्णन में केवल बातचीत की नम्रता दिखाई गई है, पर इसके अलावा अन्य स्थानों में भी नम्रता की ज़रूरत है। बड़ों के वचन को आदरपूर्वक ध्यान के साथ सुनना,

उनकी आज्ञा को हर्ष के साथ मानना, नियत स्थान पर ठीक नियत समय में पहुँच जाना आदि सब इसी के भेद हैं।

जब तुम दूसरों के साथ विनय का बर्ताव करोगे तो वे भी तुम्हारे आत्ममान में कमी न होने देंगे, इससे चित्त सदा ही प्रसन्न रहेगा और समाज में वैमनस्य का अभाव हो जावेगा। किसी ने सत्य कहा है कि गम्भीर विद्या, उत्तम चाल ढाल, उच्च कुल, और प्रकृष्ट मनुष्यत्व का परम सरत्र विनय ही है।

(१८) शहर व देहात का वास

दो आदमियों की बातचीत

प्रस्तावना

हमारे पाठक एक ही रीति के प्रबन्ध पढ़ने से उकता गये होंगे, इसलिए यह प्रबन्ध दूसरे ढङ्ग से लिखा जाता है। 'बातचीत' भी एक प्रकार का प्रबन्ध है जिसमें एक आदमी की बात का ठीक ठीक उत्तर दूसरा आदमी देता है। इसमें कभी कभी कुछ हास्य भी होता है जो 'अप्राकरणिक' होने पर भी विषय में 'नमक मिर्च' लगाकर उसे स्वादिष्ठ कर देता है।

सीतल ग्रामवासी है धनेश्वरप्रसाद सिंह शहराती है।

सीतल—भाई धनेश्वरप्रसाद सिंह, हमारे यहाँ एक दिन और ठहर जाओ, अन्त में तो आपके कर्म में वही

शहर की गन्दी हवा, कारख़ानों के इञ्जनों का धुँवा, सड़कों की धूल, गाड़ियों की घड़घड़ाहट, घोड़ों की टापों की खटपट, बड़ी बड़ी भीड़ों का कलकल शब्द आदि हैं। मुझको सन्देह होता है कि आपके नथुने और कान ऐसी अनिष्ट वस्तुओं से बेकाम क्यों नहीं हो गए। न आपको कभी ताज़ी शुद्ध हवा मिलती होगी और न हरे हरे खेतों के उत्तम दृश्य, न जङ्गली पक्षियों के सुरीले राग नसीब होंगे और न जङ्गल के आनन्द-दायक स्थान। स्वास्थ्य की यह दशा है कि शरीर पीला पड़ रहा है; पेट पर हाथ फेर फेरके अजीर्ण की शिकायत कर रहे हो; ऐनक बिना कुछ सूझता बूझता भी नहीं, एक कोस चलना भी कठिन है।

धनेश्वर—बस, भाई बस; नीम के कीड़े को नीम ही भला मालूम होता है; तुमको अपने खेत-खलियान के सिवा और ज्ञात ही क्या है, नित्य उठकर खेतों में काम करो, और देर-सबेर रूखी-सूखी रोटियाँ खा लो, न तुम्हें भाँति भाँति के भोजन मिल सकते हैं; न अच्छे अख़बार मिलते हैं जिनसे अपने व अन्य देशों का हाल ज्ञात हो; न कोई यहाँ पुस्तकालय है जिससे पुस्तकें लेकर पढ़ो और विद्या बढ़ाओ। और क्या, अच्छे पढ़े-लिखे आदमी भी बहुत नहीं हैं जिनकी

सङ्गति से सुधार हो। बड़ी दूकानें भी नहीं हैं जहाँ सब चीज़ें मिल सकती हों। अगर चित्त ऊबे तो बहलाने के लिए न कोई सभा है, न थियेटर है, न जलसा है।

शीतल—अच्छा, भाई, यह सब सही, हमें तो स्वतन्त्रता सबसे अच्छी लगती है। तुम लोग एक एक घर में सौ सौ आदमी सिकुड़कर रहते हो, यहाँ तो जितनी जगह चाहें घेर लें। तुम्हारे शहराती कष्टों से बचकर चित्त को एकाग्र रख सकते हैं और जो कुछ थोड़ी बहुत कमाई होती है उसी से अपना गुज़र करते हैं।

धनेश्वर—देहात में कमाई थोड़ी तो है ही। व्यापार चल ही नहीं सकता, क्योंकि न रेल है न अच्छी सड़कें हैं जिनसे माल आ जा सके। तार का कोई सिलसिला नहीं, यहाँ तक कि डाकघर भी दूर है, सप्ताह में किसी दिन डाकवाला आ गया तो बड़ी बात है। कितना ही ज़रूरी काम हो जल्द नहीं हो सकता; पैदल आदमी दौड़ते दौड़ते हाँप जाता है।

शीतल—सच है; पर जितना लाभ तुमको होता है उससे अधिक व्यय भी तो है; तुम्हें कोई वस्तु बिना दाम के नहीं मिलती, जलाने की लकड़ियाँ, दातूनें,

यहाँ तक कि मिट्टी तक मोल लेते हो। हमको यह सब चीज़ें और नाना प्रकार के फूल-फल वैसे ही मिल जाते हैं। जिस काम में तुम एक रुपया ख़र्च करते हो वह हम बारह आने में, और इससे भी कम में कर लेते हैं। हमारे यहाँ की बची उपज तुम्हारे पास पहुँचती है।

धनेश्वर—अच्छा, तुम्हारा लड़का बड़ा हुआ है उसे क्या गाँव ही में पढ़ा लोगे? वह शहर में रहकर पढ़ेगा और फिर शहर ही में रहकर अपना काम-धन्धा करेगा तो उसे देहात क्योंकर मिलेगी?

सीतल—ठीक है; यहाँ तो पढ़ाने का प्रबन्ध नहीं हो सकता है। भाई जहाँ रहने की बान पड़ जाती है वहीं अच्छा लगता है; हमारी ज़रूरतें यहीं पूरी हो जाती हैं इसलिए हमें सन्तोष है, लड़का शहर में रहेगा तो कभी कभी हमको भी वहाँ की सैर मिल जाया करेगी।

धनेश्वर—और मैं भी तुम्हारे लड़के के साथ आकर कुछ दिन गाँव में रहा करूँगा। अच्छा, अब जाने की आज्ञा दीजिए, नमस्कार!

सीतल—नमस्कार! ईश्वर आपका कल्याण करे।

(४) व्यापार से लाभ

एक वस्तु किसी को देकर उससे दूसरी वस्तु लेना

व्यापार कहलाता है। ईश्वर ने सब देशों में सब चीज़ें नहीं पैदा कीं, इसलिए जो चीज़ एक के व्यय से बढ़ती है वह दूसरे देश को चली जाती है और उसके बदले में वहाँ से अन्य वस्तु चली आती है। इससे दोनों देशों के वासियों को अपने निर्वाह की चीज़ें मिलती हैं।

व्यापार कोई नया काम नहीं है। जिस समय संसार में सभ्यता नहीं फैली थी और लोग पर्वतों की गुहाओं और पत्तियों के झोपड़ों में रहकर पत्थर के टुकड़ों व हड्डियों से किसी प्रकार खोद-खादकर कुछ अनाज पैदा करते थे, तभी से व्यापार की जड़ पड़ी। पत्थर व मिट्टी के बरतनों के बदले अनाज दिया जाता था। ज्यों ज्यों बहुत से लोग एकत्र बस्तियों में रहने लगे, अपनी व दूसरी बस्तियों की पैदावार बदलने लगे, इसी प्रकार सभ्यता के साथ ही साथ व्यापार भी बढ़ता गया।

हमारे समय में व्यापार की बड़ी उन्नति हुई है। विज्ञान-शास्त्र की वृद्धि के कारण सहस्रों कलें निकली हैं जिनसे सब प्रकार के काम शीघ्र बनाकर तैयार कर लिये जाते हैं और रेल व जहाज़ के द्वारा सब देशों में पहुँचा दिये जाते हैं। पृथ्वी का कोई कोना ऐसा नहीं रह गया जिसका सम्बन्ध दूसरे देशों से न कर दिया गया हो।

व्यापार से लाभ इतने हैं कि यदि विस्तार से लिखे जावें

तो एक बड़ी पुस्तक बन जावेगी। कुछ बड़े बड़े लाभ यहाँ दिखलाये जाते हैं।

धनागम—व्यापार का आर्थिक लाभ असीम है। माल लाने से पहले ही व्यापारी निश्चय कर लेता है कि अमुक स्थान में अमुक वस्तु की बड़ी माँग है, उसी के अनुसार माल मँगाकर विक्रय करता है और लाभ उठाता है। कभी कभी कुछ कारणों से भाव बहुत चढ़ जाता है और यदि अपने पास माल उपस्थित हुआ तो दूने दाम हो जाते हैं। इसका प्रमाण प्रत्यक्ष है; यदि धनियों की गणना की जावे तो अधिकतर व्यापारी ही लोग निकलेंगे। इसी लिए कहा गया है कि व्यापार में लक्ष्मीजी का वास होता है।

स्वतन्त्रता—यह भी एक बड़ा गुण है। दूसरों के बन्धन में रहना और अपना विचार छोड़कर उसी की आज्ञा से सब काम करना, मनुष्य क्या पशु-पक्षी भी नहीं चाहते। व्यापारी को स्वतन्त्रता रहती है अर्थात् वह अपनी रुचि के अनुसार हर काम कर सकता है। यह बात नौकरी-चाकरी में नहीं होती; इसी लिए कहा गया है कि "उत्तम खेती मध्यम बान (वाणिज्य, व्यापार), निषिद्ध चाकरी भीख समान"।

कामों की वृद्धि—व्यापार में जो माल कहीं से आता है उसके संग ही संग उसके लाभ, प्रयोग करने के उपाय और कभी कभी बनाने के उपाय भी दिये रहते हैं। एक ही काम के लिए बहुत सी वस्तुओं के देखने से उन सबके गुण-अवगुण ज्ञात

हो जाते हैं, और अपने देश में भी वैसी वस्तुओं के पैदा करने का प्रयत्न होने लगता है। देखते ही देखते हमारे भारतवर्ष में कपड़े, शक्कर, दियासलाई, सिगरेट आदि बनाने के यन्त्र स्थापित हो गये हैं।

सभ्यता—जब दूसरे देश के साथ व्यापार होता है तो वहाँ के लोगों के साथ मिलना-जुलना होता है। कभी कभी उन देशों को जाना पड़ता है। इससे उन लोगों के विचारों, रस्मों और धर्मों का परिचय मिलता है और मनुष्य की बुद्धि बढ़कर सहनशीलता पैदा करती है, और 'कूपमंडूकता' जाती रहती है। सभ्यता फैलाने का यह एक बड़ा उपाय है।

स्वास्थ्य—भिन्न भिन्न देशों के जलवायु से शरीर नीरोग रहता है। व्यापारी आदमी कभी बेकार तो बैठता ही नहीं, इसलिए बेकारी की कठिन बुराइयाँ उसके पास तक नहीं फटकतीं। परिश्रम करने की बान पड़ जाती है, जिससे शरीर स्वस्थ और चित्त प्रसन्न बना रहता है।

उपकार—इस शब्द से यह अर्थ नहीं कि व्यापारी जन किसी को अपना धन लुटा देता है, पर हाँ अन्य प्रकार से वह अवश्य भलाई करता है। हर देश की चीज़ एकत्र रखता है जो तुरन्त दाम देने पर मिल जाती है, अगर दुर्भिक्ष पड़े तो अन्य देशों से अनाज लाकर उपस्थित करता है; बहुत से नये पदार्थ अपने देश में बनवाता या पैदा कराता है;

समय पड़ने पर प्रजा ही की नहीं वरन् राजा की भी धन से सहायता करता है।

उदाहरण के लिए हम अँगरेज़ों का नाम लेंगे। इनका ख़ास देश इँगलिस्तान कोई बड़ा देश नहीं है; हिन्दुस्तान और प्रायः अन्य देश भी जो इनके राज्य में हैं व्यापार की उत्तमता से इनको मिले हैं; परन्तु अब भी जितने बड़े बड़े अँगरेज़ राज्य-प्रबन्ध में लगे हैं उनसे कितने ही अधिक व्यापार में अपना तन मन धन समर्पित कर रहे हैं।

[नोट—इस प्रबन्ध में व्यापार के लाभों का वर्णन लेख के अन्य भागों से कुछ अधिक विस्तृत है, क्योंकि १९१७ की 'वर्नाक्यूलर फ़ाइनल परीक्षा' में यही लाभ पूछे गये थे।]

(२०) लम्बे अनध्याय (छुट्टियों) के दिन कैसे बिताने चाहिएँ?

प्रस्तावना—हर स्कूल में वार्षिक गर्मी की छुट्टी १ मास से तीन मास तक होती है।

बहुधा कैसे बिताई जाती है—पुस्तकों को बाँधकर रख देने से और समय को मिथ्या खोने से।

छुट्टी का मतलब—शारीरिक व मानसिक थकावट का मिटाना और आगामी वर्ष के लिए काम के योग्य

बनाना। इसके लिए हितकारी बातें, प्रातःकाल का टहलना, खुली वायु में व्यायाम करना, खेलना आदि।

पढ़ना—यदि गत वर्ष में श्रम नहीं किया और पढ़ाई में कमी रही है तो छुट्टी के प्रथम भाग में पूरी होनी चाहिए, अन्तिम भाग में स्वास्थ्य-रक्षा के उपाय व्यायाम आदि।

बाहरी विद्या—यदि इच्छा हो तो कोर्स से बाहरवाली नई विद्या का सीखना, परन्तु श्रम अधिक न करना, व्यावहारिक विद्या जैसे पौधे लगाना, सींचना आदि का सीखना।

दूसरे स्थान—जलवायु बदलने के लिए अन्यत्र जाना, वहाँ की वस्तुओं को देखना।

समय—समय का नियम रखना, क्योंकि छुट्टियों में यह कठिनता से रहता है।

फल—ऐसा करने से शरीर स्वस्थ, चित्त उत्साहित और विद्या में अभ्यास बना रहता है।

(२१) स्वतन्त्रता व परतन्त्रता

परिभाषा—स्वतन्त्रता—अपनी इच्छा के अनुसार काम करना।

परतन्त्रता—दूसरे की इच्छा के अनुसार काम करना।

परतन्त्रता के भेद—ईश्वर से, राजा से, जाति तथा समाज से, व्यापारियों से, माता-पिता आदि बड़ों से, धन से। इन सबसे क्यों परतन्त्रता होती है उसका वर्णन।

विवेक—राजा, समाज और व्यापारियों की परतन्त्रता से आत्म-गौरव नहीं जाता; क्योंकर? माता-पितादि बड़ों की परतन्त्रता से लाभ है, क्योंकि वे अपने को ढङ्ग पर लगाने व जीवन को सफल बना देने का यत्न करते हैं। धन की परतन्त्रता अधम है।

धन—प्राय: जीविका की स्वतन्त्रता ही से लोग स्वतन्त्र कहे जाते हैं। व्यापार में अधिक स्वतन्त्रता है, नौकरी में कम, उधार लेने में बहुत अल्प।

उधारदाता या 'व्यवहारी' के सामने आँख नीची करनी पड़ती है; समय पर रुपया न पहुँचने से विश्वास जाता रहता है; कभी कभी उसके प्रतिकूल उपाय सोचे जाते हैं, यह कृतघ्नता है।

विचार की स्वतन्त्रता—किसी के कहने में न आकर स्वयं वस्तुओं का विचार करना और दृढ़ निश्चय करना। यह अच्छा है; पर प्रमाद हो जाने का बड़ा भय है; इसलिए यदि स्वयं न समर्थ हो तो योग्य पुरुषों के वचन के अनुसार चले।

उपदेश—जिस परतन्त्रता से चरित्रशुद्धि हो वह अच्छी है, परन्तु धन-विषयक स्वतन्त्रता ही भली है।

(२२) आत्म-साहाय्य

सबसे उत्तम है—केवल दूसरों ही के भरोसे पर रहने से हानि, समय पर उनका न पहुँचना, उनसे नीचत्व का भाव रखना, अपनी दुर्बलता का अपने पर तथा औरों पर प्रतीत होना, उत्साह-शक्ति के अभाव से जीवन कटु लगना, आदि।

लाभ—अपने आप सहायता कर लेने का साहस—हर काम का सुगम हो जाना, उत्साह-शक्ति का बढ़ना, किसी के परतन्त्र न रहकर आत्म-गौरव बढ़ाना। श्रम की बान। अनुभव पाना। अकेले भी संसार में अपना मार्ग ढूँढ़ लेना। चरित्र की दृढ़ता। अपनी गाढ़ी कमाई का आदर। परिमित व्यय। स्वयं कठिनता उठाने के कारण दूसरों की कठिनता का जानना, और उन पर कृपा करना।

उदाहरण—धनियों के बालक पढ़ने में इतना उद्योग नहीं करते जितना निर्धनों के, क्योंकि इन्हें अपने ही बल से विद्या सीख पारितोषिक लेने की इच्छा है। ऐसे समय में अल्प सहायता भी बड़ी कृतज्ञता का कारण है।

(२३) रुपये की आत्म-कथा

[आत्म-कथा उस वर्णन को कहते हैं जो स्वयं किसी वस्तु, जड़ या चेतन, के मुख से अपने ही बारे में कहा हुआ माना जाता है। ऐसे वर्णन में सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि विषयों पर प्रकाश डालने का अवसर मिलता है।]

"खट् खट्" के कर्ण-कटु शब्द ने हज़ारों क्या लाखों वर्ष के सोये हुए हमारे विच्छिन्न शरीरावयवों को प्रगाढ़ निद्रा से जगा दिया। उस समय तक हममें समझने की शक्ति नहीं थी; हमको न यह ज्ञान था कि हमारा कर्त्ता या स्रष्टा कौन है और हम कितने काल से इस अचेतन अवस्था में पड़े हैं, और इस मोहनिद्रा के टूटने पर न यही ज्ञान हुआ कि अब हमारी क्या गति होगी। परन्तु आपको आज अपनी आत्म-कथा सुनाने की योग्यता पाने के लिए हमने उस समय अलौकिक चेतना-शक्ति प्राप्त की।

हमारी अन्धकारमयी, प्रस्तरमयी शय्या पर फावड़े, खन्ते, बरमे आदि चल रहे थे। उस निर्दय, स्वार्थलोलुप प्राणी, मनुष्य, का हमने क्या अपकार किया था जिसके बदले में उसने हमें अपने निसर्ग-दत्त स्थान से निकाल देने का साहस किया! हमने भरसक प्रयत्न किया कि हम अपना स्थान न छोड़ें, परन्तु ज्यों ज्यों हम अपनी शय्या से चपकना चाहते थे,

त्यों त्यों अधिक वेग के प्रहार हमारी छाती पर पड़ते थे। अन्त में अपना चिर-परिचित भूगर्भवर्ती स्थान छोड़ने के लिए हमें बाध्य होना पड़ा। तब हमें प्रतीत हुआ कि होना पड़ा। तब हमें प्रतीत हुआ कि स्वार्थियों के लिए "जिसकी लाठी उसकी भैंस" के अतिरिक्त अन्य कोई क़ानून नहीं है।

उस समय हमारी क्या मानसिक दशा थी, इसके वर्णन करने के लिए हमारे पास शब्द ही नहीं हैं; हाँ, यदि आप इसकी एक झलक देखना चाहते हैं तो किसी ऐसे अकिंचन से पूछिए जो बरबस अपने स्थान से च्युत कर दिया गया है। हमारी करुणाभरी आहें, और माता रत्नगर्भा वसुन्धरा के प्रति अन्तिम प्रणाम समाप्त भी नहीं होने पाये थे कि कुलियों ने ढोके के ढोके वहाँ से निकालकर प्रकाश में डाल दिये। सूर्य का प्रकाश पड़ते ही हमारी चक्षुरिन्द्रिय-शक्ति जाग सी उठी। अब हमें ज्ञात हुआ कि हमारे शरीर के अवयव एक ही स्थान पर, एक ही पिण्ड में, सङ्घटित नहीं हैं, किन्तु अणुरूप से उन ढोकों में यत्र-तत्र फैले हैं; इन अवयवों के साथ पत्थर, मिट्टी आदि का एक बहुत बड़ा अंश मिला है।

इसी बीच एक आदमी ने एक ढोका उठाकर उसे ध्यानपूर्वक देखा और कहा, "इसमें से अच्छी चाँदी निकलेगी।"

'निकलेगी !' शब्द ने हमारे एक भाला सा मार दिया।

हमने सोचना प्रारम्भ किया कि हम पुरुष नहीं, स्त्री हैं; इससे भी अधिक वेदना यह जानकर हुई कि हमारे अवयव अभी इस पत्थर और मिट्टी से अलग किये जायँगे। हाय! ग़रीब भाइयों के साथ हिल-मिलकर रहना भी अब हमारे लिए असम्भव कर दिया जायगा! परन्तु इस दुःख के साथ ही एक सुख भी मिला; वह यह कि हमको अपना नाम 'चाँदी' मालूम हो गया।

इस समय जो कल्पनाएँ अपनी आगामी दशाओं के विषय में हमारे मन में हो रही थीं उनका कहना कठिन है; वे अनन्त थीं, और हृदय को क्षुब्ध कर रही थीं। अन्ततोगत्वा हमने साहस धारण किया।

हमारी चिन्ता बहुत दिन न रहने पाई। एक दिन क़ुलियों ने आकर हमारे बहुत से ढोके भट्ठी में डाल दिये। उसकी उष्णता का वर्णन करना हमारे लिए असम्भव है; तुलसीदासजी के शब्दों में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि—

"विन्ध्य की दवारि कैधौं कोटि शत सूर हैं";

अथवा—

"युग षट भानु देखे प्रलय कृशानु देखे,
शेपमुख अनल बिलोके बार बार हैं।
तुलसी सुन्यो न कान सलिल सर्पी समान
अति अचरज किए केशरीकुमार हैं॥"

यदि अन्तिम चरण को इस प्रकार कर दीजिए कि "तुलसी सुन्यो न कान रजत सर्पी समान, अति अचरज किये खनिज-सोनार हैं" तो लंकादाह का वर्णन हमारी दशा पर सोलहों आने लागू होता।

उस उष्णता में हमारे अवयव द्रवरूप होकर बहने लगे। पत्थर और मिट्टी आदि जिन पड़ोसियों और मित्रों पर हमें इतना भरोसा था उनका हृदय हमारी इस संकटावस्था में द्रवित न हुआ। इसी पाप और छल के कारण वे दग्ध होकर ठीकरे हो गये। सत्य है, "जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिनहिं विलोकत पातक भारी"। अब हमें अपने अत्यन्त स्वकीय मित्रों, अर्थात् अपने ही अणुओं पर विश्वास रहा; वे सब एकत्र होकर और पूर्ण संगठन करके एक नाली की राह से बाहर निकल पड़े, जहाँ शीत के सम्पर्क से हमारा शरीर फिर एक बार ठोस हो गया। इस अग्नि-परीक्षा से धोकेबाज़ नीच संगती छुट गये और हमारा शुद्ध एकजातीय संगठन चन्द्र-किरणों के समान चमक उठा। अपनी घोर तपस्या के बल से हमने अपना स्वरूप जाना, मानो हम जीवात्मा हों जो काम-क्रोधादि विकारों से शुद्ध हो गये हों। अब हमें अपने व्यक्तित्व का भान हुआ, और तब से हमने अपने को एकवचन स्त्रीलिंग 'चाँदी' शब्द के नाम से विभूषित पाया।

कुछ दिन शान्ति से रहकर मेरे लिए फिर एक बार प्रभु

की आज्ञा हुई कि तुम संसार का व्यावहारिक कार्य करो। परन्तु संसार-यात्रा में खरे सत्वगुण से काम नहीं निकलता; दूसरों पर अपनी धाक जमाने तथा आत्म-श्लाघा के बिना काम नहीं चलता। अतः प्रभु ने फिर मुझे एक बार भट्ठी में झुकवाया, और मेरी नस नस में रजोगुण, तमोगुण व्याप्त करने के लिए थोड़े ताँबे की पुट दे दी। परिणाम यह हुआ कि ये गुण मुझमें पैदा हो गये, और मेरी व्यवहार-कुशलता की सनद मेरे ऊपर छाप दी गई। प्रभु का चित्र भी मैंने अपने हृदय पर अङ्कित करा लिया।

चूँकि मैं भारतवर्षीय हूँ और भारतवर्ष में पुरुषों की प्रतिष्ठा स्त्रियों से अधिक मानी जाती है, और चूँकि मुझे 'चाँदी' इस स्त्री-सूचक नाम से सन्तोष नहीं था; और मैंने पुरुष होने का भाव लेकर अपना रूपान्तर किया था, इसलिए अब की बार मुझे मर्द होने का सौभाग्य हुआ और मैं 'रुपया' कहलाया।

अब मेरी संसार-यात्रा प्रारम्भ हुई। पहले मैं एक बैंक में गया जहाँ असंख्य साथियों के साथ मुझे रहना पड़ा। मुझे दुनिया देखने की लालसा थी, अतः थैली में कोषाध्यक्ष का हाथ लगते ही मैं उसक उसककर और कूद कूदकर सबसे आगे अपने को पेश करता था। एक दिन एक साहब ने 'चेक' नामक एक काग़ज़ में कुछ लिख भेजा; उसे देखते ही कोषाध्यक्ष ने मुझे और मेरे बहुतेरे साथियों को साहब के

चपरासी के सिपुर्द कर दिया। मार्ग में बहुत समय नहीं लगा; शीघ्र ही हम लोग साहब के सामने पहुँचे। उन्होंने तुरन्त मेरी सेना भङ्ग कर दी, दस को एक के सिपुर्द किया तो आठ को दूसरे के। मैं अन्य चौदह साथियों के साथ ख़ानसामाँ के हाथ पड़ा। मेरी इच्छा थी कि कम से कम ख़ानसामाँ जी की बीवी के तो दर्शन कर लूँ; पर घर पहुँचने से पहले ही उसने मुझे एक दूकानदार के हवाले किया। दूकानदार ने किसान को, किसान ने ज़मींदार को, ज़मींदार ने वेश्या को, वेश्या ने कलवार को, कलवार ने महुवेवाले को, महुवेवाले ने खटिक को, खटिक ने बाग़वाले को मुझे सिपुर्द किया। इस प्रकार मुझे जमकर कहीं स्थान न मिला; मैं हाथोंहाथ चलता रहा। यह चञ्चलतारूपी महाशक्ति मेरी अधिष्ठात्री देवी महालक्ष्मी से मुझे मिली।

आप समझ सकते हैं कि इतने शीघ्र आवागमन से कितना कष्ट होता है। परन्तु मेरे लिए सन्तोष इसी में है कि मैं जिसके पास जाता हूँ वह मेरा परम हार्दिक स्वागत करता है; मेरा शशिवर्ण, प्रसन्नवदन देखकर किसका हृदय विकसित नहीं हो उठता? आज तक मेरा तिरस्कार कहीं नहीं हुआ।

मेरा सा अनुभवी संसार में दूसरा कोई नहीं। कौन सा घर है जहाँ मैं न गया हूँ; कौन सा और किसका ऐसा कर्म है जिसका पूर्ण रहस्य मैं न जानता हूँ; कौन सा ऐसा पुण्य

है जो मेरे द्वारा न हुआ हो; कौन सा ऐसा पाप है जो मेरे द्वारा या मेरे लिए न हुआ हो। यथार्थ पूछिए तो संसार मेरे बल पर स्थित है। लोग विद्योपार्जन करते हैं मेरे लिए; अदालतें, पुलिस, थाने सब स्थापित हैं मेरे लिए; मरुदेश, समुद्र, पर्वत आदि भयानक स्थानों में लोग जान निछावर करते हैं मेरे लिए; युद्ध की विकराल ज्वालाएँ वीर सहते हैं मेरे लिए; चोरी, डाका, झूठ, हत्या आदि महापाप किये जाते हैं मेरे लिए; निदान कोई कार्य ऐसा नहीं है जो मेरे लिए न किया जा सके।

इतना ही नहीं, मनुष्य के मन पर मैं पूरा अधिकार रखता हूँ; उसे और का और बना देता हूँ; अभिमान, आत्म-श्लाघा आदि पैदा कर देने की जो शक्ति मुझमें है, वह अन्यत्र नहीं। सब गुणों से हीन निपट अनारी के पास भी मैं यदि रहूँ तो लोग उसे धर्मावतार, न्यायमूर्त्ति, दयासागर, सर्वगुण-आगर आदि विशेषणों से अलंकृत करते हैं। सर्व गुण मेरे अधीन हैं; मैं ही मनुष्य का सर्वस्व हूँ।

परन्तु स्मरण रखिए, मैं उन्हीं से जीतता हूँ जो दृढ़ता नहीं रखते, जिनकी बुद्धि परिपक्व नहीं। सदाचार को सर्वस्व समझनेवाले, और मुझे केवल व्यावहारिक साधन समझने-वाले लोग मेरा उपयोग केवल पुण्यकर्म में, सत्पथ में, करते हैं, और पाप के प्रलोभनों को पददलित कर देते हैं। मैं आपके लिए भी ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आपकी प्रवृत्ति सदा

सत्कर्म में, परोपकार में, पुण्य-कार्य में, मुझे व्यय करने की हो। तथास्तु।

"रुपया।"

प्रबन्ध लिखने के लिए कुछ विषय

(क) (१) आम (२) केला (३) कटहल (४) लोहा (५) सोना (६) चाँदी (७) घोड़ा (८) हाथी (९) ऊँट (१०) कुत्ता (११) चूहा (१२) मक्खी (१३) तुलसी का पेड़ (१४) नीम का पेड़ (१५) देवदार का पेड़ (१६) लखनऊ (१७) काशी (१८) आगरा (१९) कोई एक शहर (२०) ग्राम्य जीवन (ऐडमिशन परीक्षा १९२७) (२१) रेल की यात्रा (२२) नौका की यात्रा (२३) पैदल यात्रा (२४) ताजमहल (२५) मेला (२६) देहाती बाज़ार (२७) ऊख पेरने का कोल्हू (२८) नाटक-घर (२९) पञ्चायत (३०) नहर (३१) छापाखाना (३२) अकाल (३३) दिवाली (३४) मुहर्रम।

(ख) (१) श्रीहर्ष कवि (२) वाल्मीकि (३) कालिदास (४) व्यास (५) शेक्सपियर (६) गौतम बुद्ध (७) ईसा मसीह (८) मुहम्मद (९) शिवाजी (१०) राना प्रताप (११) अशोक (१२) समुद्रगुप्त (१३) सिकन्दर (१४) महारानी विक्टोरिया (१५) लार्ड न्यल्सन (१६) नेपोलियन बोनापार्ट (१७) अकबर (१८) राजा हरिश्चन्द्र (१९) अहल्याबाई (२०) बीरबल (२१) ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (२२) अश्वमेधयज्ञ (२३) स्वयंवर (२४)

सिपाही विद्रोह (२५) ईस्ट इंडिया कम्पनी (२६) महाभारत-युद्ध (२७) यूरोपीय महायुद्ध।

(ग) (१) भोजन का परिपाक (२) तारागण (३) सूर्य्य (४) भारतवर्ष के लिए हिमालय पर्वत का महत्त्व (५) इन्द्र-धनुष (६) ऋतु-परिवर्तन (७) आँधी या तूफ़ान (८) भूकम्प (९) ओस।

(घ) (१) उधरहि अन्त न होय निबाहू (२) अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुन गईं खेत (३) लोभ पापकर मूल (४) जहाँ चाह है वहाँ राह है (५) बिना विचारे जो करै सो पाछे पछताय (६) बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेय (७) दादा बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपैया (८) एक पन्थ दो काज (९) विधि कर लिखा को मेटनहारा ? (१०) छिद्रेष्व-नर्था बहुलीभवन्ति (११) तुख़्म तासीर सुहबत असर।

(ङ) (१) स्त्री-शिक्षा के गुण तथा दोष (२) मांस खाना उचित है या अनुचित ? (३) दहेज़ के पक्ष विपक्ष में बहस (४) अस्त्र-शस्त्र हमारा हित करते हैं या अहित ? (५) अँगरेज़ी सभ्यता से भारतवर्ष को लाभ है या हानि ? (६) धन-वान् रोगी होना अच्छा होता है या निर्धन तन्दुरुस्त होना ? (वर्नाक्युलर टीचर्स सर्टिफ़िकेट परीक्षा, १९२२) (७) हमारे देश के स्कूलों में दस बजे से तीन बजे तक पढ़ाई का होना अच्छा है या सबेरे और शाम को पढ़ाना और दोपहर में

बन्द रखना अच्छा है ? (व० टी० स० परीक्षा १९२३) (८) स्कूल के लिए छात्रों के अभिभावकों की सहानुभूति कहाँ तक आवश्यक है ? (व० टी० स० परीक्षा १९२४) (९) आभूषणों से हानि अथवा लाभ (ऐडमिशन १९२४) (१०) विद्यार्थियों का छात्रावास में रहना अच्छा है अथवा घर पर (ऐड० १९२३)।

(च) (१) विद्या (२) व्यायाम (ऐडमिशन परीक्षा, १९२७) (३) बेकारी (४) अँगरेज़ों व हिन्दुस्तानियों की समाजों का भेद (५) व्यसन (६) मन की रोक (७) घर का प्रेम (८) नाटक या थियेटर (९) गर्व (१०) आत्म-साहाय्य (११) कोआपरेटिव बैंक (१२) संगति (१३) आरोग्य (१४) इतिहास-पठन (व० टी० स० परीक्षा १९२१) (१५) हिंसा (१६) यात्रा (१७) ऐक्य (१८) परिश्रम (१९) बालचर-शिक्षा (स्कौटिंग) (प्राइमरी टीचर्स सर्टिफ़िकेट परीक्षा १९२७ ऐड० १९२६) (२०) संगीत-कला (२१) मित्र (२२) सदाचरण (२३) सत्यवादिता (२४) हस्तकौशल या कारीगरी (प्रा० टी० स० परीक्षा १९२७) (२५) सन्तोष (२६) उत्साह (२७) छुट्टियों के समय का उचित उपयोग (ऐड० १९२५; प्रा० टी० स० परीक्षा १९२६) (२८) स्वदेश-प्रेम (२९) आशा (३०) कर्तव्य (३१) दीर्घसूत्रता (३२) प्रकृति-निरीक्षण (प्रा० टी० स० परीक्षा १९२७) (३३) देश-भ्रमण (३४) अख़बार (३५) विज्ञान की उपयोगिता (३६) दया (३७) क्षमा (३८)

ब्रह्मचर्य (३९) स्वच्छता (४०) दारिद्र (४१) मितव्ययिता (४२) स्वावलम्बन (४३) सेवा-समिति (ऐडमिशन १९२७) (४४) पशुप्रेम (ऐडमिशन १९२३, १९२७) (४५) गुरुभक्ति (ऐड० १९२६) (४६) पतितोद्धार (ऐड० १९२७) (४७) खुले मैदान की पढ़ाई (ऐड० १९२६) (४८) एक बूँद पानी की आत्म-कहानी (ऐड० १९२२) (४९) माता-पिता के प्रति बालकों का कर्तव्य (ऐड० १९२२)।

९—पत्र-लेख

साधारणतः जो नियम प्रबन्ध लिखने के हैं वही पत्र लिखने के भी हैं; परन्तु पत्र में अपने विषय के स्थापन करने की अधिक स्वतन्त्रता रहती है। साधारण प्रबन्ध बहुत से पाठकों के लिए लिखे जाते हैं, इसलिए उनमें कोई बात ऐसी न आनी चाहिए जिसमें अपना आत्मीय विवरण हो, क्योंकि इस विवरण से बाहरी लोगों का कुछ मतलब नहीं होता। परन्तु पत्र एक ही मनुष्य के लिए लिखा जाता है; इसी कारण आवश्यकतानुसार उसमें सब कुछ लिख सकते हैं। इस पर भी पत्र में व्याकरण और नियमों की शुद्धि होनी चाहिए; और अगर पत्र के भीतर कोई प्रबन्ध माँगा जाता है तो उसे बतलाई हुई रीति से लिखना चाहिए। जहाँ तक हो सके पत्र में किसी विशेष विषय पर प्रबन्ध लिखने का कारण दिखला देना चाहिए जिससे पत्र और प्रबन्ध का सिलसिला जुड़ा रहे; परन्तु व्यर्थ बढ़ाव न हो।

जिसके नाम पत्र लिखा जाता है उसके और लेखक के सम्बन्ध से पत्र की रचना भिन्न भिन्न प्रकार की हो जाती है। पत्र तीन प्रकार के होते हैं, (१) छोटों की ओर से बड़ों को; (२) बड़ों की ओर से छोटों को; (३) बराबरवालों को। फिर इनमें से हर एक के कई कई भेद हो जाते हैं; क्योंकि छोटाई, बड़ाई और बराबरी एक ही तरह की नहीं होती। दूसरी रीति से भी पत्रों के दो भेद हो सकते हैं (१) जान-पहचानवालों के पत्र; (२) काम-काजी पत्र। जान-पहचान-वालों के पत्र में कुछ न कुछ प्रेम-भाव और घरेलूपन रहता है, पर काम-काजी पत्रों में केवल नियम की पाबन्दी और मतलब की बात रहती है।

पत्र लिखने की हिन्दुस्तानी और अँगरेज़ी दो रीतियाँ हैं। हिन्दुस्तानी रीति में लम्बी-चौड़ी प्रशस्ति और कुछ अन्य विशेषता भी होती है, अँगरेज़ी रीति में प्रशस्ति बहुत छोटी और मतलब की बात बहुत अधिक होती है। हमारे देश में पहले तो सभी पत्र देशी रीति से लिखे जाते थे और अब भी बहुत से लिखे जाते हैं; इसी लिए वह पुरानी रीति या प्रथा या प्रणाली कहलाती है। परन्तु अँगरेज़ी का प्रभाव फैल जाने से अब बहुत से पत्र उसी के अनुसार लिखे जाते हैं; इसको नई या अँगरेज़ी चाल कहते हैं। आवश्यक बातें दोनों प्रथाओं में होती हैं, परन्तु उनके लिखने का क्रम जुदा जुदा होता है। अब आगे आवश्यक बातें दिखलाई जाती हैं।

हर पत्र में निम्नलिखित बातें किसी न किसी रूप से आती हैं—(१) लेखक का नाम, (२) पता, (३) जिसको लिखते हैं उसका नाम व पता, (४) प्रशस्ति, (५) हाल, (६) समाप्ति और (७) तारीख़ व दिन।

पुरानी प्रथा में प्रशस्ति के साथ ही लेखक का नाम व पता तथा जिसको लिखते हैं उसका नाम आदि लिख देते हैं और समाप्ति के बाद तारीख़ व दिन आदि देते हैं, हाल बीच में रहता है। उदाहरण—

स्वस्तिश्री परम कृपाकारक काशीपुरी विद्यमान मित्रवर राधाकृष्ण को प्रयाग से देवदत्त का नमस्कार पहुँचे। मैं सकुशल हूँ, आपका कुशल-वृत्त सदा परमेश्वर से चाहता हूँ.. ....इति शुभम्।

मिती चैत्र शुक्ल ६ रविवार,

संवत् १९८४ वि०।

नोट—लेखक और लेख्य के स्थानों के नाम सदा आवश्यक नहीं। यदि दोनों को दूसरे का पता ज्ञात है तो लिखने की ज़रूरत नहीं, नहीं ज्ञात है तो लिखना चाहिए।

नवीन प्रथा में लेखक का पता पत्र के आरम्भ ही में दाहिनी ओर लिखकर उसके नीचे तारीख़ आदि दे दी जाती

है। तब प्रशस्ति लिखकर हाल दिया जाता है। अन्त में समाप्ति व लेखक का नाम लिखते हैं। उदाहरण—

प्रयाग

१० अप्रैल सन् १९२७ ई०

मित्रवर राधाकृष्ण,

आपका कृपाकांक्षी,

देवदत्त।

पुरानी प्रथा का विवरण

साधारण नियम यह है कि बड़ों को चिट्ठी लिखने में उनके पद के अनुसार उनकी महिमा, प्रशंसा, प्रणति, आदर आदि और अपनी छोटाई व विनीत भाव दिखलाये जावें; बराबरवालों की चिट्ठी में समानता का व्यवहार, प्रीतिभाव आदि दिखलाये जावें; और छोटों की चिट्ठी में प्रेमभाव, कृपाभाव, और भलाई की आकांक्षा आदि प्रकट करने योग्य हैं। यह सब बातें कुछ तो स्फुट रूप से शब्दों के द्वारा और कुछ अस्फुट रूप से अर्थ के द्वारा दिखलाई जाती हैं। कोई शब्द ऐसा न लाना चाहिए जिससे इन भावों में कमी प्रकट हो।

प्रशस्ति के आदि में 'सिद्धि' या 'स्वस्ति' शब्द होने चाहिएँ; बड़ों के लिए 'सिद्धि' और बराबरवालों या छोटों के लिए

'स्वस्ति' शब्द हो; परन्तु बहुधा बड़ों के लिए भी कोई लोग 'स्वस्ति' शब्द का प्रयोग कर देते हैं; इसमें कोई हानि नहीं है।

फिर 'श्री' शब्द का प्रयोग होता है। बहुतेरे लोग आदर का प्रमाण दिखलाने के लिए 'श्री' शब्द के आगे कोई अङ्क लिख देते हैं; जैसे गुरु या माता-पिता या इन्हीं लोगों के समान जनों के लिए 'श्री ६' माता-पिता या भर्ता के लिए 'श्री ५', शत्रु के लिए 'श्री ४', मित्र के लिए 'श्री ३', नौकर के लिए 'श्री २', स्त्री, पुत्र और इन्हीं के समान लोगों अर्थात् शिष्य व छोटे भाई के लिए 'श्री १', लिखते हैं, परमेश्वर के लिए या किसी बड़े महाराज के लिए श्री १०८ का प्रयोग होता है। अब तो लोगों ने श्री १००८ तक की भी नौबत पहुँचाई है, इस पर एक दोहा है—

> श्री लिखिए षट गुरुन को, पांच स्वामि रिपु चारि।
> तीन मित्र द्वय भृत्य को, एक पुत्र अरु नारि॥

यह सब झगड़ा आवश्यक नहीं है, इसलिए इच्छानुसार छोड़ दिया जा सकता है।

इसके उपरान्त पदवी के अनुकूल प्रशंसा-वाचक विशेषण लिखे जाते हैं। जैसे बड़ों को 'सर्वशुभोपमेय, सकल शुभोपमा योग्य, सर्वोपरि विराजमान' आदि, बराबरवालों को 'परम कृपाकारक, अतिहितैषी, कृपासागर' आदि, छोटों को 'प्रेमपात्र, चिरञ्जीवी' आदि लिखते हैं।

फिर बड़ों के लिए प्रणाम, दण्डवत, चरण छूना, पाद-चर्या आदि, बराबरवालों को नमस्कार, राम राम, जोहार आदि, और छोटों को आशीर्वाद लिखते हैं।

इसके पश्चात् क्षेम कुशल आदि, कभी वैसे ही और कभी देवता के स्मरण के साथ लिखते हैं।

सब प्रकार के पत्रों के लिए प्रशस्ति और समाप्ति के कुछ नमूने आगे दिये जाते हैं। इन्हीं के अनुसार और भी नये नये बन सकते हैं।

पत्रों के नमूने

(१) गुरु को

सिद्धि श्री ६ (क) सकल शुभगुणालङ्कृत (ख) समस्त-बुध-मण्डली-मण्डित, (ग) विद्वद्वरशिरोमणि, (घ) अज्ञान-विनाशक, (ङ) विद्यावृद्ध, (च) पूज्यपाद, (छ) सर्वशुभो-पमेय, (ज) प्रणतहितकारी, शुभस्थान वाराणसी-विराज-मान श्री गुरुदेवचरणकमलों को लखनऊ से (१) शिष्या-धम, (२) दास, (३) चरणसेवक, (४) अनुचर, (५) आज्ञाकारी, (६) विनयी, नारायणप्रसाद का (अ) साष्टांग प्रणाम पहुँचे, (आ) दण्डवत् स्वीकार हो। यहाँ आपकी दया, वा कृपा से सब (।) कुशल, (॥) मङ्गल, (।॥) क्षेम, (॥॥) कल्याण, (।॥॥) शुभ है, आपकी कुशल-क्षेम सदा परमेश्वर से चाहता हूँ। श्रीमान् ने या महानुभाव ने जो कृपा-

पत्र-द्वारा इस सेवक को आज्ञा दी कि..........................

....................................इति शुभम्। मिती।

नोट—ऊपर के नमूने में, (क), (ख) आदि गण में केवल एक या दो लिखने चाहिएँ; (१) (२) वाले गण में केवल एक ही लिखना चाहिए। परन्तु इन संस्कृत शब्दों में शुद्धता का बड़ा विचार रहे, और का और न लिख जावे।

नीचे के नमूनों में भी जहाँ (क), (ख), (ग), आदि गण दिये हों, उनमें केवल एक का प्रयोग किया जावे।

(२) पिता को

सिद्धि श्री ६ (क) अनेक उपमायोग्य; (ख) स्नेहसागर, प्रयाग शुभस्थान विद्यमान श्री पिताजी की सेवा में आज्ञाकारी देवदत्त के प्रणामसमूह पहुँचें। मैं आपके आशीर्वाद से सकुशल हूँ; आपके कुशलवृत्त का श्री नारायण से आकांक्षी रहता हूँ। वृत्त यह है कि......

.........इति शम्। मिती.........

नोट—पितामह (पिता के पिता, चचा आदि), मातामह (माता के पिता व चचा आदि), पितृव्य (चचा) आदि, तथा इन्हीं के समान बड़ों को इसी प्रकार पत्र लिखना चाहिए। गुरु व पिता आदि वृद्धों का नाम पत्र के भीतर लिखना अनुचित लगता है; इसलिए उसे न लिखे।

(३) मातुल [मामू] को

सिद्धि श्री शुभ स्थान मथुरा सर्वगुणआगर, दयासागर, सर्वशुभोपमायोग्य श्री मामा पशुपतिनाथजी योग्य लिखी आगरा से यज्ञदत्त का प्रणाम बाँचिएगा। अत्र कुशलं तत्रास्तु।

.........इति शुभम्। मिती.........।

नोट—फूफा, मौसा (खालू); श्वशुर और इसी प्रकार के मानयोग्य सम्बन्धियों को इसी प्रकार आदरसूचक पत्र लिखने चाहिएँ। इन लोगों के भी नाम लिखने की अधिक आवश्यकता नहीं, केवल नाता प्रकट करने-वाला नाम (श्री मौसियाजी, श्री फूफाजी आदि) लिखना अच्छा है।

एक बात यह भी स्मरण रखने योग्य है कि पिता, पितामह आदि के पत्रों में ऐसे वचन न लिखने चाहिएँ जैसे "यदि आप ऐसा करें तो अत्यन्त कृपा होगी, या मैं आपको धन्यवाद दूँगा"। ऐसे वचनों से दुनिया का दिखाव, स्नेह की कमी और अन्यता का भाव झलकता है। फूफा आदि सम्बन्धियों में पिता की सी एकता नहीं होती, इसलिए दुनियादारी का बर्ताव आवश्यक है। हर एक नातेदार को पत्र लिखने में दुनियादारी व एकता का पूरा विचार करके उसी के अनुसार आदर दिखलाना चाहिए।

(४) बड़े भाई को

सिद्धि श्री चुनार शुभ स्थान मान्यवर भाईजी को अयोध्या से लिखा चरणचाकर रुद्रदत्त का चरण छूना स्वीकार हो। यहाँ सब कल्याण है, आपके कुशल का सदा अभिलाषी रहता हूँ। बहुत दिन से आपका कृपापत्र नहीं आया, चित्त में चिन्ता है। यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो उसे क्षमा करके कुशल-वृत्त लिखिए।

……इति। मिती………।

नोट—बड़ा भाई पिता के समान आदरणीय व मित्र के समान प्रेमपात्र होता है; इसलिए पत्र से दोनों बातें प्रकट हों। चचा व फूफा व मौसा व मामा आदि के पुत्र जो अवस्था में बड़े हैं ऐसे ही बर्ताव के योग्य हैं; परन्तु उनमें सहोदर भाई की अपेक्षा आदरभाव कम व मित्रभाव अधिक होता है

बड़ा बहनोई अपना मान्य व पूज्य है, इसलिए उसके पत्र में अधिक आदरसूचक व उसकी कृपा के बोधक शब्द चाहिएँ; बड़े श्याल (साले) के पत्र में भी स्नेह व आदर-दर्शक शब्द हों।

(५) स्वामी को

सिद्धि श्री (क) सर्वसिद्धिसमृद्ध, (ख) दीनदयालु, (ग) करुणासागर, (घ) आश्रितपालक, (ङ) औदार्य-

प्रसिद्ध, (च) महानुभाव, श्री राजा शिवप्रसाद जू की सेवा में अनुचर या दास मोहनलाल की प्रणति स्वीकृत हो। ईश्वर महानुभाव का नित्य ही कल्याण करे। महाभाग के आज्ञानुसार इस सेवक ने.....................इति शुभम्। मिती................।

नोट—जब किसी बड़े आदमी के यहाँ से अपनी जीविका हो तो उसकी चिट्ठी में अपने पद के अनुसार बर्ताव किया जाता है। जैसे कोई पण्डित या पुरोहित चिट्ठी लिखेगा तो यह लिखेगा—

'स्वस्ति श्री धर्ममर्यादापालक, गोब्राह्मणहितैषी, परमगुण-ग्राहक महाराज शिवप्रसादसिंहजी को पण्डित होरीलाल का अनेकानेक आशीर्वाद पहुँचे। ईश्वर आपको सर्वदा विजयी करे।'

यदि यही राजा 'शिवप्रसाद' जाति में ब्राह्मण हैं तो पण्डित लोग उन्हें 'आशीर्वाद' के स्थान पर 'नमस्कार' लिखेंगे।

यदि पत्र के लिखनेवाले व पानेवाले दोनों ब्राह्मण नहीं हैं, तो अपने यहाँ की रीति के अनुसार प्रणाम, सलाम, जोहार आदि शब्द लिखे जावेंगे; परन्तु हर एक दशा में उस स्वामी की बड़ाई का विचार अवश्य रहेगा।

(६) राजा को

स्वस्ति श्री समस्तनृपशिरोमणि, सकलशत्रुगञ्जन, दुष्टदल-खण्डन, धर्मसेतुपालक, प्रजारञ्जक, नीतिपरायण, भारतेश श्री

१०८ महाराज सम्राट् पञ्चम जार्जजी के चरणों की सेवा में आश्रित प्रजा रामनिधि की कोटिशः आशीष स्वीकृत हो। परमेश्वर महाराज को चिरञ्जीवी व सर्वसुखभोक्ता बनावे। यह सेवक विनय-पूर्वक प्रभु की शरण में निवेदन करता है कि............शुभम्। मिती............।

नोट—हिन्दी का भाग्योदय कभी ऐसा काहे को होगा कि महाराज जार्जजी की सेवा में इस भाषा में विनयपत्र जावे। तथापि उदाहरणार्थ लिखा गया। स्मरण रखना चाहिए कि पृथ्वीपति महाराज के लिए प्रणाम लिखना अनुचित नहीं है, तथापि उसकी दीर्घायु के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करना अधिक योग्य है।

(७) पति को

सिद्धि श्री ५ प्रेमरसायन, जीवनाधार, प्राणनाथ, आर्य-पुत्र को आपकी दासी ललिता का गाढ़ालिङ्गनसमेत प्रणाम। आपका कुशल-क्षेम श्री पार्वतीजी से हर समय चाहती हूँ, जिससे मेरा भी सौभाग्य है।............

............आशा करती हूँ कि इस अबला का स्मरण करके आप शीघ्र ही दर्शन देकर सुखी करेंगे। अधिक क्या लिखूँ। इति मिती.........।

ऊपर के कई एक नमूने नातेदारों के लिए हैं; परन्तु बहुत पुरुष ऐसे होते हैं जिनसे कोई नाता नहीं है, पर प्रतिष्ठा और

कभी कभी अवस्था में बड़े होने के कारण वे मान व आदर योग्य हैं। ऐसे लोगों के साथ उनकी प्रतिष्ठा के अनुसार पत्र-व्यवहार करना चाहिए, और जिस गुण के कारण वे बड़े हैं उस गुण के सूचक विशेषण लिखने चाहिएँ। एक ही ग्राम या मुहल्ले के निवासी जो अवस्था में अपने से बहुत बड़े हैं और अपने पिता, चचा आदि से मित्रभाव रखते हैं वे आदर-सूचक शब्दों के योग्य होते हैं। शहरों में कम, पर गाँवों में अधिक यह रीति है कि दूसरी जातिवाले सभ्य पुरुष से भी कुछ न कुछ नाता कहने व बर्ताव करने के लिए मान लिया जाता है। इस दशा में उस नाते व अपनी जाति के अनुसार प्रणाम, नमस्कार, आशीष आदि लिखे जाते हैं।

(८) प्रतिष्ठा में बड़े को

सिद्धि श्री हरद्वार शुभस्थान सर्वगुणालंकृत मान्यवर पंडित ईश्वरप्रसाद को अजमेर से आनन्दीदास का नमस्ते पहुँचे। दोनों ओर परमात्मा कुशल करें। एक विषय में आपको कुछ कष्ट देता हूँ; आशा है कि आप कृपा करके मेरे लिए उसका उद्योग करेंगे।.........इति। मिती.........।

बड़ी स्त्रियों को पत्र

पुरुष सम्बन्धियों के नाम जो नमूने ऊपर दिये गये हैं उन्हीं के समान स्त्री-सम्बन्धियों के पत्र भी होते हैं; परन्तु विशेषण आदि स्त्रीलिङ्गबोधक हो जाते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के पत्र अधिक सरल और प्रेमसूचक हों।

(९) माता को

सिद्धि श्री परमहितकारिणी दयामयी श्रीमती माताजी के चरणकमलों में सेवक लक्ष्मीदास के दण्ड-प्रणाम पहुँचें। आपके आशीर्वाद से मैं सुखी हूँ और आपके कुशल-मंगल का परमेश्वर से प्रार्थी हूँ।.........इति। मिती............।

नोट—दादी व नानी आदि आदरणीय स्त्रियों को इसी प्रकार पत्र लिखना चाहिए। अन्य सम्बन्धियों के लिए प्रेम व आदर के प्रमाण के अनुसार पत्र होने चाहिएँ।

छोटों के नाम पत्र

(१०) शिष्य को

स्वस्ति श्री १ बलरामपुर शुभ स्थाने सर्वशुभलक्षणयुक्त चिरञ्जीवी श्री द्वारकाप्रसाद योग्य लिखी इटावा से परमसुख का आशीर्वाद बाँचना। यहाँ सब आनन्द है, श्रीजानकीनाथ तुमको चिरायु करें। तुम्हारा आनन्ददायक पत्र बहुत दिन से नहीं आया, चित्त को चिन्ता है। उचित है कि शीघ्र अपना कुशल-वृत्त लिख भेजो।..............आशीर्वाद के सिवा और क्या लिखूँ। शुभम्। मिती......

(११) पुत्र को

स्वस्ति श्री चिरञ्जीवी प्रिय वत्स मथुराप्रसाद को इन्द्रदत्त का अनेक आशीर्वाद। ईश्वर तुम्हें सर्वदा सुखी रक्खे जिससे हम लोगों को आनन्द हो। आज तुम्हारी चिट्ठी आई, यह

बाँचकर हर्ष हुआ कि तुम अपने वर्ग में सबसे उत्तम पास हुए हो। ईश्वर तुम्हारी उन्नति सर्वदा करेगा।

प्रिय वत्स ! इस उन्नति के कारण फूलकर तुम अपना नित्य-कर्म न छोड़ देना...... ..इति। मिती............।

नोट—पौत्र, दौहित्र (नाती), भतीजा, दामाद और पुत्र की समता करनेवाले सब सम्बन्धियों को इसी प्रकार पत्र लिखा जाता है। इन सबमें भी स्नेह और प्रशंसा का विचार चाहिए, जैसे जैसे नाता दूर होता है वैसे ही प्रशंसावाले शब्द (कुलदीपक, भाग्यशाली आदि) अधिक होते हैं।

(१२) छोटे भाई को

स्वस्ति श्री स्नेहभाजन, बाहुबल चिरजीवी भैया लक्ष्मण को अयोध्यापुरी से जानकीनाथ का आशीर्वाद पहुँचे। उभयत्र श्रीकुलगुरुजी की कृपा से कल्याण हो। मेरे कहने से जिस कार्य के लिए तुमने मुनि-आश्रम पर जाने का कष्ट उठाया है उस काम में कोई हानि न होने पावे, नहीं तो हम लोगों के यश में बट्टा लग जावेगा। सुनो भैया, अपना धर्म स्थिर है तो सब कुछ है................................उस काम से निवृत्त होकर शीघ्र ही लौट आना.........इति। मिती...।

नोट—छोटे भाई के लिए पुत्र का सा प्रेम और मित्र का सा आदर चाहिए।

चचा, फूफा, मामा आदि के पुत्र जो अवस्था में अपने से

छोटे हो इसी बर्ताव के योग्य हैं; पर ज्यों ज्यों सम्बन्ध में दूरी होती है त्यों त्यों सहोदर छोटे भाई की अपेक्षा प्रेम में कमी व आदर में अधिकता होती है। परन्तु यह कोई बँधा नियम नहीं है; विशेष आदमी के लिए जैसा भाव होता है वैसा ही पत्र लिखा जाता है।

(१३) नौकर को

नोट—जैसा नौकर हो वैसा ही पत्र होता है; सज्जन नौकर के लिए कभी कभी बराबरी का बर्ताव होता है; विद्वानों के लिए उनके गुण के अनुसार कभी बड़ाई का, कभी बराबरी का व्यवहार होता है; छोटे नौकरों के लिए पुराने व्यवहार के अनुसार 'श्री' शब्द नहीं लिखा जाता। दो नमूने आगे दिये जाते हैं।

(क) स्वस्ति श्री२ कानपुर शुभ स्थाने श्रीगङ्गादीनजी को विदित हो कि आपके विनय-पत्र के अनुसार हमने दस दिन की छुट्टी और बढ़ा दी है। चाहिए कि इस समय के बाद अपने काम पर उपस्थित हो जाओ। इति। सीतारामसिंह लखनऊ।............मिती.........।

(ख) ठाकुर ज्ञानसिंह की ओर से महावीर कहार को ज्ञात हो कि ज़रूरी काम आ जाने से हम नियत समय पर वहाँ नहीं आ सकते। इसलिए तुम तीन दिन तक दिन की दोनों गाड़ियों के समय निगोहाँ स्टेशन पर आ जाया करो। मिती............।

(१४) स्त्री को

स्वस्ति श्री १ (क) हृदयवल्लभा, (ख) आज्ञाकारिणी, (ग) प्रेमरूपिणी श्रीमती वामाङ्गिनी योग्य लिखो लाहौर से रूपकिशोर का (१) गाढ़ प्रेम, (२) आशीर्वाद, (३) यथायोग्य पहुँचे। हम यहाँ पर कुशलपूर्वक हैं; और तुम्हारा कल्याण सदा चाहते हैं।..................................प्रेम के सिवा और क्या लिखूँ। इति शुभम्। मिती......।

नोट—स्त्री की चिट्ठी प्रेममय चाहिए, अधिक दिखलाने की ज़रूरत नहीं। स्त्री का नाम लेना शास्त्र से वर्जित है, इस पर एक श्लोक है—

'आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च।
श्रेयस्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोः॥'

अर्थात् कल्याण की इच्छा करनेवाला अपना नाम, माता-पिता आदि गुरुओं का नाम, अति कृपण का नाम, बड़ी सन्तान का नाम, और स्त्री का नाम न ले। चिट्ठी में बिना अपना नाम लिखे लेखक का पता नहीं चलता; परन्तु और नाम बराये जा सकते हैं।

(१५) प्रतिष्ठा में छोटे को

स्वस्ति श्री काशी शुभस्थान अनेक उपमायोग्य श्री बाबू बैजनाथसिंहजी को छपरा से प्रद्युम्नकृष्ण का जय गोपाल बाँचिएगा। आगे मेरे पिताजी रुद्राभरण बनवाना चाहते हैं

इसलिए कृपा करके रुद्राक्ष के एक सहस्र बड़े दाने लेकर पारसल-द्वारा मेरे पास भेज दीजिए और जो व्यय हो उसका ब्योरा भी लिखिए। मैं इस कृपा से बाधित हूँगा। इति शुभ। मिती......।

स्त्रियों के लिखे पत्र

स्त्रियाँ भी पुरुषों ही के समान पत्र लिखती हैं। यदि पुरुष को पत्र हो तो पुँल्लिङ्ग विशेषण होते हैं और सब बातें सामान्य हैं।

बराबरवालों के नाम पत्र

बराबरवाले या तो मित्र होते हैं या बाहरी आदमी होते हैं जिनसे कोई लगाव नहीं है और जिनको कार्यवश चिट्ठी लिखी जाती है, जैसे दूकानदार आदि। मित्रों में भी कोई अधिक प्रतिष्ठायोग्य, कोई अधिक प्रीतियोग्य, कोई अधिक उपदेशयोग्य होते हैं; इन सबको इन्हीं भावों से पत्र लिखना चाहिए।

दूकानदारों आदि को बड़ी प्रशस्ति ठीक नहीं है; काम की बात स्फुट रूप से लिखनी चाहिए। दो साधारण नमूने दिये जाते हैं।

(१६) मित्र को

स्वस्ति श्री ३ दिल्ली शुभस्थान श्री (क) प्रियतम, (ख) प्रियवर, (ग) मित्रवर, (घ) सुहृत्तम, (ङ) सकलगुणनिधान,

(च) आनन्दरूप, (छ) प्रेमपात्र, (ज) प्रीतिरसायन, (झ) सदा सहायक, (ञ) परम उपकारक, (ट) कृपाकारक, (ठ) दयासागर श्रीयुत भाई राधारमणजी को कलकत्ता से गोपीनाथ का (१) नमस्कार, (२) नमस्ते, (३) राम-राम, (४) जयशङ्कर, (५) जोहार स्वीकार हो। यहाँ सब कुशल है, आपका कुशल-वृत्त ईश्वर से चाहता हूँ।..............................
..................इत्यलम्। शुभ मिती..................

(१७) दूकानदार को

स्वस्ति श्री स्थान बम्बई श्री सेठ तुकाराम जावजी को प्रयाग से सीतानाथ का यथायोग्य। कल १० पुस्तकों के लिए मैंने आपको लिखा है, भूल से एक 'नागानन्द' नामक पुस्तक अधिक लिख गई है; इसलिए उसे छोड़कर; शेष ९ पुस्तकें शीघ्र भेजिएगा। इति मिती.............................।

नवीन या अँगरेज़ी रीति

पुरानी प्रथा की लम्बी प्रशस्तियाँ संस्कृत शब्दों से भरी रहती हैं जिनके लिखने में अशुद्धि कर जाने का बड़ा भय रहता है। नई प्रथा में इनसे बचाव हो जाता है; काग़ज़ और समय में भी कुछ बचत होती है; परन्तु आदर और प्रेम का अतिशय भाव (जिसका प्रकट करना हिन्दुस्तानी प्रकृति का प्रधान अङ्ग है) अच्छे प्रकार प्रकाशित नहीं हो पाता।

निश्चय रूप से यह निर्णय नहीं हो सकता कि कौन सी प्रथा उत्तम है; अँगरेज़ी प्रभाव से दूर रहनेवाले और पुराने

लोग नई प्रथा के शत्रु हैं; नये और अँगरेज़ी शिक्षित पुरुष पुरानी दुनियादारी के विरोधी हैं। हर आदमी को अपने अनुसार निर्णय कर लेना चाहिए।

पुरानी रीति में जो विशेषण लिखे गये हैं उनमें से बहुत से नई रीति में काम आते हैं। दो एक शब्दों से सम्बोधन करके दूसरी पंक्ति में कभी प्रणाम आदि शब्द लिखते हैं, कभी नहीं लिखते। इसी प्रकार कुशल आदि लिखने की अधिक चाल नहीं है; प्राय: एकदम हाल लिखना प्रारम्भ कर दिया जाता है। ऐसे ही समाप्ति भी छोटी ही रहती है।

कई प्रकार के पत्रों की प्रशस्ति व समाप्ति के शब्द आगे दिये जाते हैं।

लेख्य	प्रशस्ति	समाप्ति
गुरु	श्रीमान्यवर, पूज्यतम, श्रद्धास्पद,	आपका दास, चरणसेवक, आज्ञाकारी
पिता	मान्यवर या पूज्यतम पिताजी,	आपका आज्ञाकारी,
फूफा	परम मान्य,	भवदीय सेवक,
मामा आदि	महानुभाव,	,, ,,
बड़ा भा	पूज्यवर भ्राताजी,	आपका स्नेहभाजन,
स्वामी	प्रभुवर, स्वामिवर, महानुभाव,	आपका दास,
पति	प्रिय प्राणनाथ, श्रीआर्यपुत्र,	आपकी दासी,
प्रतिष्ठा में बड़ा	मान्यवर महाशय,	आपका कृपाभिलाषी, ,, कृपाकांक्षी, ,, कृपापात्र,
धर्मवृद्ध	धर्मधुरीण, धर्मसर्वस्व,	,, ,,
शिष्य	आयुष्मान् (नाम)	तुम्हारा हितैषी ,, शुभचिन्तक

लेख्य	प्रशस्ति	समाप्ति
पुत्र	प्रिय वत्स (नाम), चिरञ्जीवी (नाम)	तुम्हारा हितेच्छु,
छोटा भाई	चिरञ्जीवी (नाम), प्रिय (नाम)	तुम्हारा प्रिय भ्राता,
नौकर	प्रिय (नाम)	आपका या तुम्हारा,
स्त्री	प्राणप्रिये,	तुम्हारा प्रेमी या स्नेही,
प्रतिष्ठा में छोटा	प्रिय महाशय,	आपका शुभचिन्तक,
मित्र	प्रिय मित्र, सुहृद्वर, प्रिय,	आपका प्रिय मित्र,
दूकानदार	श्रीयुत, महाशयजी,	भवदीय,
राजसंबंधी अधिकारी	मान्यवर महाशय	प्रार्थी, सेवक
निमन्त्रण में	श्रीयुत या श्रीमान्, परम प्रिय महाशय या श्रीमान्यवर,	कृपाभिलाषी, विनयी, दर्शनाकांक्षी

नमूने

(१८) मित्र को

कर्नलगंज, प्रयाग।
मई १ सन् १९२७।

परमप्रिय मित्र,

आज आपका पत्र पाकर हर्षित हुआ। चिरंजीवी सत्य-नारायण के यज्ञोपवीत में आने का यथाशक्ति उद्योग करूँगा;

आपका मित्र
श्रीलाल

(१९) विनय-पत्र

श्रीयुत हेडमास्टर साहेब,
सेंट्रल हिन्दू-स्कूल,
बनारस।

महाशय,

मेरे भतीजे का विवाह ता० ५ मई सन् १९२७ को है जिसमें मेरा पुत्र जगन्नाथप्रसाद, जो आपके स्कूल के नवें दर्जे में पढ़ता है, शरीक होगा। आशा है कि आप कृपा करके उसे ४ मई से १० मई तक एक सप्ताह की छुट्टी दे देंगे।

प्रार्थी,

ता० २ मई १९२७ ई० } रघुनाथप्रसाद
१०७ चौक, काशी

(२०) दूकानदार को

श्री सेठ तुकाराम जावजी
२३, कालबादेवी रोड,
बम्बई।

श्रीमन्,

कल के पत्र में मैंने १० पुस्तकों के लिए आपको लिखा है; पर 'नागानन्द' नामक पुस्तक भूल से लिख गई है। इसलिए उसे छोड़कर शेष ९ पुस्तकें शीघ्र ही भेजिएगा।

तारीख़ १ मई
सन् १९२७ ई०

आपका,
मुहम्मद अब्बास
१३ चौक, लखनऊ।

(२१) निमन्त्रण-पत्र

ॐ

श्रीमङ्गलमूर्तये नमः।

सिद्धिसदन सुन्दरवदन, नँदनन्दन मुदमूल।
रसिकशिरोमणि साँवरे, रहहु सदा अनुकूल॥

श्रीयुत मान्यवर,

मिती भाद्र कृष्ण ८ बुधवार संवत्.........को श्रीभगवान् कृष्णजी का जन्मोत्सव मनाने के लिए रात्रि-समय में ९ बजे से ११॥ बजे तक विनीत के घर पर हरिकीर्तन

होगा, इसके अनन्तर एक घण्टे तक पूजा होगी। इसलिए सविनय निवेदन है कि आप मित्रों-सहित कृपा करके उक्त समय पर पधारें और मेरे उत्साह की वृद्धि करें।

२७ कटरा, प्रयाग। } दर्शनेच्छुक,
मि० भाद्र कृ० ४ } रामानन्द मिश्र।

(२२) विज्ञापन

सर्व-साधारण पर विदित हो कि ता० १२ दिसम्बर सन् ......को मेओहाल, इलाहाबाद में दिन के तीन बजे से ४॥ बजे तक एक बड़ी सभा श्रीमत्सम्राट् पञ्चम जार्जजो के राज-तिलक का वार्षिकोत्सव मनाने के लिए होगी। श्रीमान् कमिश्नर बहादुर सभापति होंगे। सभा में सबका प्रवेश हर्ष-पूर्वक किया जावेगा।

....
मन्त्री।

लिफ़ाफ़े

(क) पदवी से

टिकट

श्रीयुत डिप्टी कमिश्नर बहादुर,
ज़ि० लखनऊ,
लखनऊ।

(ख) ग्राम से

(१) शहर में

टिकट

श्रीयुत बाबू लक्ष्मीनारायणजी, बी० ए०

झाऊलाल का पुल,

लखनऊ।

(२) गाँव में

टिकट

पण्डित चन्द्रशेखर सुकुल,

गाँव अतरौली,

डा० मोहनलालगंज,

ज़िला लखनऊ।

इस पुस्तक में प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्द (अकारादि क्रम से) तथा उनका अँगरेज़ी अनुवाद

अक्षर—Letter
अनुप्रास (शब्दालङ्कार)—Alliteration
अनुवाद—Translation
अनुलेख—Dictation
अन्वय—Prose order
अपभ्रंश—Corrupted form
अभिधा (शब्द-शक्ति)—Denotation
अर्थ—Meaning
अलङ्कार—Figure of Speech
अवधारण—Emphasis
आज्ञात्मक वाक्य—Imperative
इंगित-सूचक चिह्न—Note of Interjection
उपमा (अर्थालङ्कार)—Simile
कर्तृवाच्य—Active Voice
कर्मवाच्य—Passive Voice
कहावत—Proverb, Adage
गद्य—Prose
गुण—Style
गौरव—Emphasis
ढाँचा (प्रबन्ध का)—Outline

तात्पर्यार्थ—Sense
द्विरुक्ति—Repetition
ध्वनि—See व्यञ्जना
निषेधसूचक वाक्य—Negative Sentence
पत्र-लेख—Letter-writing
पद्य—Poetry, Verse
पर्यायवाची (शब्द)—Synonym
पूरक—Complement
प्रश्न-सूचक चिह्न—Note of Interrogation
भावार्थ—Idea
भाववाच्य—Impersonal (Voice)
भाषा—Speech
मुहाविरा—Idiom
रचना—Composition
रस—Sentiment
रूप—Form
रूपक (अर्थालङ्कार)—Metaphor
लक्षण—Definition
लक्षणा (शब्द-शक्ति)—Connotation
वर्णनात्मक वाक्य—Indicative
वाक्य—Sentence
वाच्यार्थ—Literal meaning
वाच्य-परिवर्त्तन—Change of Voice
विधिसूचक वाक्य—Positive Sentence
विपरीतार्थक शब्द—Antonym
विराम-चिह्न—Punctuation Mark

विस्तार—Extension
व्यञ्जना (शब्द-शक्ति)—Suggestion
व्यस्त वर्णन—Indirect Narration
व्याख्या—Explanation
व्युत्पत्ति—Derivation
शब्द—Word
श्लेष—Double entendre, Pun